

षष्ठ सोपान – लंका काण्ड

ओम तत्सदात्मने नमः

दो.- लव निमेष परमाणु युग, बरस कलप सर चंड।

भजसि न मन तेहि रामको, काल जासु कोदंड॥

सिंधु बचन सुनि राम, सचिव बोलि प्रभु अस कहेउ।

अब बिलम्बु केहि काम, करहु सेतु उतरै कटकु॥

गोस्वामी जी कहते हैं कि अरे मन! उस राम को क्यों नहीं भजते जो काल रूपी धनुष को धारण करने वाला है। और लव, निमेष, दिन, महीना वर्ष, युग आदि छोटे-बड़े वाणों को उस धनुष पर चलाता रहता है। तो यहां राम के निरवयव स्वरूप को लिया गया है। जो काल से अबाधित है। सबका नियंत्रण करने वाला, काल को भी नियंत्रित करने वाला है। ऐसा जो राम है, वह निर्लेप परमात्मा उपासनीय है। वह आत्मा-राम, काल से परे है। काल या समय की सीमा से परे है। अज-अविनाशी और सनातन सत्य-स्वरूप है। उसका भजन करना चाहिए। वह राम जो सदैव-सर्वत्र रम रहा है, व्यापक है, शुद्ध है, बुद्ध है, अलख है, उसमें मन लगे। क्योंकि एक वही है जो प्रकृति से परे है। गोस्वामी जी कहते हैं -

‘तात राम नहिं नर भूपाला।

भुवनेश्वर कालहु कर काला॥’

स्पष्ट कह दिया कि राम कोई राजा नहीं है। राम तो उस परमात्मा का नाम है जो प्रकृति से परे है, लेकिन राम का यह अव्यक्त स्वरूप जल्दी समझ में आता नहीं। इसलिए भगवान के प्रेमी लोग ज्यादातर स्थूल तौर-तरीके से अपनी भावनाओं को समर्पित करते रहते हैं। और आगे प्रगति नहीं कर पाते। तो भी अपनी स्थिति-परिस्थिति के अनुसार परमात्मा से लगाव बना रहे - यही बहुत बड़ी बात है।

हां, तो जब समुद्र ने बताया कि नल-नील की सहायता से सेतु बन सकता है। तो फिर राम की आज्ञा से सुग्रीव ने बन्दरों को लगाया सेतु बनाने में। तो इस संसार से ही सब जानकारी लेनी पड़ती है।

दो.- अति उतंग गिरि पादप, लीलहिं लेहिं उखड़।

आनि देहिं नलनीलहिं, खहिं ते सेतु बनाइ॥

पानी में पत्थर तैरने की बात अगर इस भौतिक जगत की मानी जायगी, तो आजकल जो आपेक्षिक घनत्व आदि विज्ञान की थेवरी खोज ली गई है, वह तो इसे खारिज कर देगी। इसलिए हमारे विचार से ये बातें अध्यात्म-साधना के क्षेत्र की हैं। अन्तर्जगत की हैं। यह संसार ही समुद्र है। इससे पार होनेके लिए संयम रूपी सेतु बनाया जाता है। यम-नियम, नल-नील हैं, जिनकी सहायता से यह संयम रूपी सेतु बन जाता है। लेकिन ये बारीक बातें हैं। सबकी समझ में नहीं आती हैं। साधना करने वाले साधक ही इनकी एडजस्टिंग कर पाते हैं। यह तो ऐसा है, कि भजन करते-करते जब चित्त रूपी चाप तोड़ दिया जाता है। चित्त जो संसारोन्मुख था, ईश्वर उन्मुख हो जाता है। तो फिर यह शक्ति-सीता स्वीकार कर लेती है, फिर सब दुनिया बदल जाती है। पहले यह मन सर्प था, वह हंस हो जाता है। ईश्वर उन्मुख हो जाता है। और सीता मिल जाती है। अभी यह जो हुआ व्यष्टिगत था, अब समष्टिगत चित्त का समाधान करना है। तो फिर चित्रकूट आ जाता है, यहीं, शरीर में। और वहाँ जाना-आना नहीं पड़ा है, कहीं! और जब चित्रकूट आ गया। तो, फिर चित्त का निरोध करके कुंडलिनियां जगाता है। तो आगे जाकर कुंभज ऋषि से भेंट हो जाती है, वहाँ कुंभज का आशीर्वाद मिल गया। तो फिर पंचवटी मिल गई। छिति जल पावक गगन समीरा! इसमें रहने लगता है। साधना के हिसाब से कुछ और आगे बढ़ा। इस तरह से प्रगति करते करते अब आ गई छठवीं भूमिका। जैसे प्राइमरी में, प्राइमरी स्कूल में जाना पड़ेगा, हाईस्कूल पढ़ने के लिये, हाईस्कूल में जाना पड़ेगा। मास्टर अध्यापक दूसरे होंगे। इण्टर बी.ए. के लिये किसी कालेज में जाना पड़ेगा। पढ़ाई तो पढ़ाई है। ऐसे ही नाम बदलते जाते हैं। कोर्स बदल जाता है। साधना भी एक पढ़ाई है, इसमें भी श्रेणी क्रम चलता है। गोस्वामी जी को भी पहले समझ में नहीं आया था यह मानस का रहस्य।

‘मैं पुनि निजगुरु सन सुनी, कथा सो सूकर खेत।

समझी नहिं तसि बालपन, तब अति रहेउं अचेत॥’

तब नहीं समझ में आया था। जब पचहत्तर साल के बाबा हो गये, तब समझ में आया, उनके। हाँ तो भाई! खूब समझ लो! यह वही कानून है। यह मन और शरीर का मामला है। यह मन बहुत खतरनाक है। अभी तुम्हारा यह मन इतना तीव्र है, कि क्षण-क्षण में भाग जाता है, और फिर भजन करते करते यह मन ही भगवान का रूप बन जाता है। वह लड़का जब प्राइमरी में पढ़ता था, तब जो मन था, वही

मन तो अब भी है उसका, जब उसने एम.ए. पास कर लिया है। क्या ब्रह्मा ने पहले वाले मन को बिदा कर दिया है? क्या दूसरा मन दिया है? समझ लो, ऐसे ही है! कुछ है नहीं इसमें। तो प्रैक्टिकल में ऐसे समझना पड़ता है। अपने मन की गतिविधि को सही दिशा देनी पड़ती है।

सैल विसाल आनि कपि देहीं।

कंदुक इव नल नील सो लेहीं॥

इस तरह से नल-नील के हाथों में आते ही वे डूबने वाले पत्थर के पहाड़, गेंद की तरह हल्के हो जाते हैं। तैरने वाले बन जाते हैं। अब इसके रहस्य को समझो।

यह जो संसार रूपी समुद्र है, विषय रूपी पानी है इसमें, ये पाप रूपी पत्थर हैं, जो इसमें डूब जाते हैं। विषय और पाप परस्पर लीन हो जाते हैं। लेकिन यहाँ हैं, नल और नील। यम और नियम। यम, नियम, त्याग, मौन, देश, काल, आसन, मूलबंध, देह की समता, नेत्रों की स्थिति, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि ये 15 योग के अंग हैं। ये सब साधक के अन्दर सजातीय पार्टी के बड़े-बड़े योद्धा हैं। इनके बलबूते यह साधना रूपी लड़ाई लड़ी जाती है। यम और नियम, ये दोनों हैं नल नील। ये बड़े भारी योद्धा हैं। ये अगर चाहें तो पाप रूपी पत्थर को ट्रांसफार्म करके पुण्यरूपी पत्थर बना सकते हैं। जब पुण्यबन गया, तो फिर वह विषय में नहीं डूबेगा। उसे स्वीकार नहीं करेगा। जो अविद्या जनित हैं संस्कार, यम-नियम की साधना के द्वारा ट्रांसफार्म होकर विद्या जनित संस्कार बन जाते हैं। जब हम पुण्य करेंगे, तो इन्द्रियों का संयम करेंगे। इस तरह से संसार रूपी समुद्र में, विषय रूपी पानी के ऊपर, संयम रूपी सेतु, पुण्य रूपी पत्थरों से बन जायेगा। तो फिर हमारी ब्रह्म ज्ञान की समझ रूपी बानरी सेना पार हो जायेगी। यह है इसका सिद्धान्त। अगर बन जाये, तो बना लेना चाहिये। अब आज लोग रुढ़ि बना लिये-चलो चलें गंगाजी से जल ले आयें। चलो रामेश्वर में गंगाजल चढ़ा आवें तो हमें मुक्ति मिल जायेगी। तो यह गलत अर्थ है। सही अर्थ यह है, कि जो यम-नियम से रहेगा। संयम करेगा, पुण्य आचरण करेगा, समझ से काम लेगा, वह साधक संसार समुद्र को पार कर लेगा, तब मुक्त होगा। यह प्रैक्टिकल करने से होगा। भजन-साधन करने वालों को ये बातें समझना चाहिए।

देखि सेतु अति सुन्दर रचना। बिहंसि कृपानिधि बोले बचना॥

परम रम्य उत्तम यह धरनी। महिमा अमित जाइ नहिं बरनी॥

करिहउं इहां संभु थापना। मोरे हृदय परम कल्पना॥

भगवान राम शंकर जी की स्थापना करते हैं। गुरु के रूप में उनको मानते हैं। और अपने नाम से उनका नामकरण कर दिये, रामेश्वर। तो शंकर की स्थापना अब तक कहीं होती है। तो उसका नामचार करते हैं। शंकर भगवान इस जगह गुरु रूप में है। शरीर की जितनी प्रक्रियाएं हैं, इस संसार में, जिसके लिये यह आया है - इन्द्रियां विषय के लिये आई हैं। हाथ काम के लिये हैं, आँख देखने के लिये, कान सुनने के लिये हैं, नाक सूँघने के लिये, मुँह खाने के लिये, वाक् बोलने के लिए है। वह तो करना ही पड़ेगा। प्रकृति का नियम है। लेकिन इसमें इनके देवताओं को पकड़ कर ऋषियों ने ऐसी कला निकाल दी, कि समझ से काम लें, तो इस संसार में रहते हुए संसार से अलग हो जाएँगे। जैसे परमात्मा संसार में रहते हुए, इससे अलग रहता है। परमात्मा बर्फ में है और ग्लेशियर में है, सबमें पानी के रूप में है। संसार बर्फ है, और ईश्वर पानी है। बर्फ में पानी ही तो है। तो परमात्मा ही संसार में है। यह जो संसार है, यह होते हुये भी नहीं है। यह मकान है, दिखाई दे रहा है। लेकिन होते हुये भी, असत्य है। इस कारण से, इसे झूठा कहते हैं। इसका कुछ आधार नहीं है। जैसे बर्फ का आधार कुछ नहीं है। यह परमात्मा रूपी पानी ही संसार रूप बर्फ बन कर दिखाई पड़ता है। इसमें हमारी कल्पना बन जाती है, प्रवृत्ति बन जाती है। इस बर्फ में कुछ है नहीं, पानी के अलावा। इसलिये पानी ही है - चाहे बर्फ के रूप में हो, चाहे पानी के रूप में। परमात्मा ही परमात्मा तो है। इस तरीके से यह शरीर जो है, इसमें अनुगत चेतन का प्रतिबिम्ब शंकर है। उनकी राम ने स्थापना किया। इन्हीं के आशीर्वाद से उसका जो टारगेट है, जो उसका लक्ष्य है, वह पूरा हो जाता है। इस तरह से भगवान राम ने शंकर की स्थापना की। ऋषियों को लाकर पूजा-प्रतिष्ठा कराई और फिर पार गए।

जे रामेश्वर दरसन करिहंहिं। ते तनु तजि मम लोक सिधरिहंहिं।

जो गंगाजल आनि चढ़ाइहि। सो सायुज्य मुक्ति नर पाइहि॥

जे रामेश्वर दर्शन करिहैं, जो अपने आत्म स्वरूप को प्राप्त कर लेगा, जो रिसर्च करके पहुँच जायगा, साधना करके, वह सायुज्य मुक्ति प्राप्त कर लेगा। और गंगाजल क्या है? यह शशि मण्डल से निकलने वाला अमृत है। जब हम श्वांसा का जाप करते हैं - बहुत समय तक। और फिर ध्यान की तन्मयता में जो आनन्द रस मिलता है- उसे अमृत कहा है संतों ने। इस गंगाजल से आत्म स्वरूप रामेश्वर का अभिषेक जो करे, उसे सायुज्य मुक्ति मिलती है। वह आत्म स्वरूप में समाहित हो जाता है।

राम ने कहाँ शंकर की स्थापना की ? कैसे शंकर की स्थापना की जरूरत पड़ी ? संसार को लाँघने के लिये, संसार से पार जाने के लिये। संसार समुद्र है। विषय रूपी पानी है। इससे पार जब हम जायेंगे तब सीता का पता हम लगा पायेंगे। तब हम सीता को जीत कर लायेंगे ? तब हम राक्षसों का विनाश कर सकते हैं। तो यह जो संसार के संकल्पों की लहरें हमारे अंदर आ रही हैं। यह संकल्प जो हो रहे हैं। चिंतवन जो हो रहे हैं। इनका जो कर्ता मन है, चित है। इनका शमन किया जाय। तब दृश्य खत्म होगा। तब दर्शन होगा सत्य स्वरूप शंकर का। ऐसा नहीं कि हम जाकर वहां दर्शन कर आवें और यह संसार की कल्पानायें चलती रहें – तो क्या दर्शन शंकर जी का हो जायेगा ? वह दर्शन दूसरा है। यह दर्शन दूसरा है। साधना की कौन सी भूमिका में भगवान ने रामेश्वर की स्थापना की ? पंचम भूमिका के ऊपर जब साधक की गति हो जाती है। तो अच्छी तरह से संशोधित सदगुणों को अपने अन्दर धारण कर लेता है – ये सब बन्दर आ जाते हैं। और अपनी सुरति को ईश्वर में लगा लेता है। ईश्वर से संबंध स्थापित कर लेता है। राम, जो सर्वत्र रम रहा है। वह सर्वत्र है एक रस है। और जो सुरति सर्वत्र उड़ रही है विषयों के पीछे। यह सुग्रीव है। इन दोनों की आपस में मित्रता स्थापित हो जाय। पदार्थों की तरफ सुरति न दौड़े। लौकिक कर्तव्य का त्याग हो जाय। और राम में स्थित हो जाय। यह मित्रता कायम हो जाय। यह बहुत साधना के बाद हो पाता है। शुभेच्छा सुविचारणा, तनुमानसा, सत्वापत्ति, असंसक्ति पाँचवी – भूमिका के ऊपर जाकर यह क्रिया हो पाती है। जब ईश्वर की प्रेमा भक्ति को प्राप्त हो जाता है साधक। प्रेम रस में निमग्न रहता है और त्याग-वैराग्य आ जाता है मन में – इस हनुमान से भेट हो जाती है, ज्ञान – विवेक परिपक्व हो जाते हैं। तब साधक की सुरति ईश्वर में लग जाती है। राम का और यह जो हमारी मेमोरी है-सुरति इन दोनों का मेल हो पाता है। मित्रता कायम होती है। और जब मित्रता कायम हो गई, तब फिर आगे जाकर जब जीवात्मा-विभीषण पकड़ में आ जाता है तब यह संसार को लाँघने का समय आ जाता है। तब इससे हम पार जा सकते हैं। वहाँ पर बगैर शंकर की कृपा के, बगैर उनकी पूजा के, यह नहीं संभव है। संसार अनुगत चेतन का प्रतिबिंब शंकर का है। तो बिना उनकी स्थापना किये, संसार को कोई लांघ नहीं सकता। उसके पार जा नहीं सकता। अर्थात् जो साधक संसार रूपी सागर के पार जाना चाहता है उसे सत्य स्वरूप शंकर को प्रतिष्ठित करना पड़ेगा। शंकर स्वरूप-संत सद्गुरु को हृदय में स्थापित करना चाहिए। तब फिर आगे सब काम हो जाते हैं। हाँ यह शिव-स्थापना,

संयम रूपी सेतु बन जाने के बाद ही होती है। साधना की छठवीं भूमिका पदार्थ अमावनी में जब पहुंच जाता है साधक तब उसमें सत्य की प्रतिष्ठा होती है।

तो जब राम अपनी सेना के सहित समुद्र के उस पार जाकर डेरा डाल दिए और रावण को खबर लगी तो वह एकदम घबड़ा गया।

सुनत श्रवन वारिधि बंधाना। दसमुख बोलि उठा अकुलाना॥

दो.- बांध्यो वननिधि नीरनिधि, जलधि सिंधु वारीस।

सत्य तोयनिधि कंपति, उदधि पयोधि नदीस॥

निज विकलता बिचारि बहोरी। बिहंसि गयउगृह करि भय भोरी॥

रावण के दस मुखों से समुद्र के दस नाम निकल गए। दस इन्द्रियां ही रावण के दस मुख हैं। जब साधक ने इंद्रिय - संयम रूपी सेतु बांध लिया तो अब इन इंद्रिय रूप मुखों से विषय सेवन नहीं होगा अर्थात् विषय रूपी जल से युक्त इस संसार - समुद्र को दसों इंद्रियों से निकाल दिया गया - यह अवस्था जब साधक की हो जाती है तो अब उसके अन्दर से मोह डगमगा जाता है। रावण अन्दर से डांवाडोल हुआ।

घर गया तो मंदोदरी ने बहुत समझाया रावण को। फिर सबेरे सभा में गया तो वहां प्रहस्त नाम का जो रावण का लड़का था-उसने भी रावण को नीति की बात बताई। लेकिन रावण किसी की कुछ सुनने वाला तो है नहीं। मोह-मद जब जकड़ लेता है किसी को तो उसकी बुद्धि काम नहीं कर पाती। मंदोदरी बुद्धि को कहते हैं। बार-बार समझाती है। परन्तु यह मन तो मैं-मेरा से जकड़ गया है। कोई असर ही नहीं पड़ता है इस पर। वह तो अखाड़ा लगा रहा है, राग-रंग में मस्त है। अन्दर की बातें हैं सब। जब मोह हावी बना हुआ है - बुद्धि को अपने वशीभूत किए है, तो उसकी कहां सलाह मानी जायगी। साधना की इस उच्चतर स्थिति में भी साधक के मन की मोहासक्ति मिट नहीं पाती। जब तक यह काम क्रोधादि जितना विकार समूह है मर मिट नहीं जायगा तब तक यह अन्दर का रावण हार मानने वाला नहीं है। यह सबसे अन्त में मरेगा।

इहां सुबेल सैल रघुवीरा। उतरे सेन सहित अति भीरा॥

सिखर एक उतंग अति देखी। परम रम्य सम सुभ्र विशेषी॥

तहं तरु किसलय मृदुल सुहाए। लछिमन रचि निज हाथ डसाए॥

ता पर रुचिर मृदुल मृगछला। तेहि आसन आसीन कृपाला॥

प्रभु कृत सीस कपीस उछंगा। बाम दहिन दिसि चाप निषंगा॥

दुहुं कर कमल सुधारत बाना। कह लंकेस मंत्र लागि काना॥

बड़भागी अंगद हनुमाना। चरन कमल चाँपत विधि नाना।।

प्रभु पाछे लछिमन वीरासन। कटि निषंग कर वान सरासन।।

दो.- एहि विधि कृपा रूप गुन, धाम राम आसीन।

धन्य ते नर एहि ध्यान जे, रहत सदा लयलीन।।

राम उस शुभ शिला पर बैठते हैं। सुग्रीव बैठे हैं, और उनकी जंघा का तकिया बनाकर राम लेट जाते हैं, और लक्ष्मण पहरे पर सजग हैं। अंगद और हनुमान पैर दबाने लगते हैं।

विभीषण मंत्रणा दे रहे हैं। तो यह ध्यान का चित्र है। साधक का स्वच्छ हृदय है शुभ शिला, और सुरति हमारी जो भगवान में लगी है, सुग्रीव है। विवेक हमारा जो लक्ष्मण है, वह सजग है। अनुराग अंगद और वैराग्य हनुमान है, जो भगवान को घेरे हुये हैं, हृदय से हटने न पाएं। और विभीषण जीवात्मा है। यह जीवात्मा, जो सब जानता है, बताता है - आगे की पीछे की बातें। तो यह सब ध्यान की अवस्था का चित्रण है। वहाँ पर गोस्वामी जी ने लिखा है।

“धन्य ते नर एहि ध्यान जे, रहत सदा लयलीन”

इस ढंग से ध्यान करते हैं। निर्मल हृदय रूपी शुभ शिला पर भगवान को बैठा ले, सुरति उनसे जुड़ी रहे। और कन्टीन्यू अनुराग बना रहे। वैराग्य विषयों की ओर न जाने दे मन को। भगवान से मन हटने न पावे। सुरति बिल्कुल लग गई है, भगवान से वह हट नहीं सकती। और विवेक जो है लक्ष्मण, वह लगा है कि कोई विषय संबन्धी विचार, बिजातीय अन्दर प्रवेश न कर जाय, यह रक्षा कर रहा है। ऐसे जब ध्यान में लीन हो जाय। ध्यान जब दृढ़ हो जाय, तन्मयता आ जाय। तब सब ठीक हो जाता है। अगर तुम्हारा 50 पैसे ध्यान लगता है, तो 50 पैसे में तो राक्षस घुसे ही रहेंगे। 80 पैसे लगने लगा, तो कुछ उधर निराशा होगी राक्षसों में। और 90 पैसे ध्यान लगा, तो वे विजातीय सब मरने लगेंगे। और जब 100 पैसा ध्यान हो जायगा तो ये राक्षस, मरे ही हैं।

तो यह ध्यान कब होता है? संयम के बाद। सेतुबन्ध के बाद। समुद्र रूपी, संसार का हर प्रकार का कर्जा जब चुकता हो जाय तब। साधक ने ध्यान दृढ़ किया, तो मानो ये सब विकार, फिर जर्जर हो गए।

तो राम ने सेतु बनाया। शंकर जी की स्थापना की। और जब उस पार जाते हैं। तो वहाँ सुबेल एक पर्वत है। वेल कहते हैं लेबल (स्तर)। सु की लेबलिंग। शुभ की

सीढ़ी पर जाकर, फिर वहां डेरा डाल देते हैं। अब कल्याणकारी प्रक्रियाओं में ही लगा रहता है साधक, सजातीय गुण धर्मों के साथ। वहां का दृश्य ऐसा है कि शाम हो जाती है। सुग्रीव बैठ जाता है। उसकी जांघ पर सिर रखकर राम लेट जाते हैं। और अंगद-हनुमान पैर दबाते हैं। लक्ष्मण वीरासन पर बैठ जाते हैं-पहरे पर। और जितने अंतरंग हैं, वो सब वहाँ रह जाते हैं। तो एक प्रश्न यहाँ-राम ने पूछा, कि चन्द्रमा में यह क्या है, काली परछाई? तो किसी ने कुछ बताया, किसी ने कुछ बताया, किसी ने कुछ बताया। हनुमान ने कहा कि भगवान यह आपका दास है, चन्द्रमा। हृदय में आपका रूप लेकर बैठा है - ध्यान करता है। फिर उधर देखा तो कहा, यह गर्जना कैसी हो रही है? बादल की जैसी, क्या वर्षा आने वाली है? तो विभीषण ने बताया कि यह रावण का अखाड़ा है, सबसे ऊपर। वहाँ पर बैठा हुआ है। और मंदोदरी बैठी है। उसके कानों के कर्णफूलों में लगे हीरे हैं, जो बिजली सी चमक जाती है। और जो तबला बजता है, नाच गाने हो रहे हैं, वह मानो बादलों की गर्जना है। राम ने कहा, 'अच्छा, इतना निश्चिंत है रावण।' तो कहा हाँ, 'यही राजाओं की खूबी है, कि दूसरा यह न समझे कि यह घबराया हुआ है। बल्कि यह समझे, कि वह तो बड़ा निर्भीक और बेपरवाह है-तुम्हें कुछ नहीं समझता, यह जताने के लिये ऐसा कर रहा है। इस तरीके से जब विभीषण ने यह भेद बता दिया, तो राम ने बाण मार दिया, तो क्षत्रमुकुट सब गिर जाते हैं। मंदोदरीके कर्णफूल टूट जाते हैं, अंधकार हो जाता है, गाना बजाने में रंग में भंग हो जाता है। बाण इतना करके वापस आ जाता है। यह कम्युनिकेशन (आन्तरिक संवाद) होता है। साधक जब साधना में सही रूप ले लेता है। अनुराग और वैराग्य चरण पकड़ लेते हैं। जीव रूपी विभीषण तीनों कालों की बातें बताने लगते हैं। सुरत सही स्वरूप में एडजस्ट हो जाती है। सुरति रूपी सुग्रीव की जांघ का सहारा ले लेते हैं राम। तब यह चित्त रूपी जो चन्द्रमा है, उसमें राम की परछाई आ जाती है। फिर यह चित्त जहाँ-जहाँ जाता है, वहां उसे, परमात्मा ही दिखाई पड़ता है। जब यह कंडीशन होती है, तो फिर यह जो 'मोह सकल व्याधिन कर मूला' -जो रावण है, यह जो कलाबाजी करता है, उसमें रंग में भंग हो जाता है। जितने विषयोन्मुख इसके क्रिया कलाप हैं, हर्ष हैं, आनन्द हैं, विषय हैं, उनके रंग में भंग हो जाता है। यह साधक की प्रथम जीत है, पहला विजय का डंका। जब साधक अपने ध्यान रूपी धनुष में परावाणी रूपी बाण द्वारा बुद्धिरूपी मंदोदरी को परमात्मा के अर्निवचनीय प्रभाव से विस्मित होते अनुभव करता है। अन्तर्जगत में इष्ट की वाणी मिलने लगी तो फिर विजय ही विजय है।

इस शरीर में जो आसक्ति है, वह लंका है। आसक्ति को नष्ट करना है। और जितने इसमें कलह किये हैं, उन्हें एक-एक करके मारना है। और शुरू में ध्यान से यह समझ में आया है कि अंगद अनुराग अपने काम में ठीक है। वैराग्य हनुमान अपने काम में ठीक है। सुरति जो अपने स्वरूप को पकड़ना चाहती है, वह ठीक है। ईश्वर का अंश, जो काम, क्रोध, लोभ, मोह के अधीन था, वह उनके कब्जे से निकलकर ईश्वर उन्मुख हो गया है। साधन उन्मुख हो गया है। वह जीव-विभीषण, सब भविष्य की जानकारी बताने के लिये तैयार है। इतनी कंडीशन जब बन जाती है, तब साधक के हृदय में दृढ़ विश्वास जाग जाता है, कि अब मेरा साधन सही ढंग पर है। अब परमात्मा, इष्टदेव कृपा करेंगे। साहस आ जाता है। ठकुरई आ जाती है।

अब जब साधक के अन्तःकरण में सजातीय-विजातीय में झगड़ा शुरू होता है, तब वह क्षत्रिय बन जाता है। शुरू में शूद्र था साधक, फिर वैश्य हो गया कुछ दिन में जब भजन के द्वारा पुण्य कमाने लगा। अब इस स्थिति में क्षत्रिय कहलाता है। तब ब्रह्मज्ञान रूपी बंदर सब साथ में हो जाते हैं। तो जब क्षत्रिय रूप आ गया। तो फिर युद्ध होगा और जब लड़ाई करके राक्षसों को मार लेगा, तो बंदरों की, देवताओं की विजय हो जायेगी। तो क्षत्रिय से ब्राह्मण हो गया। ब्रह्म को पा जायेगा। तो यह लंका काण्ड, छठवीं भूमिका पदार्थ अभावनी का कथानक है। बहुत आगे की बात है।

मंदोदरी सोच उर बसेऊ। जबते श्रवनपूर महि खसेऊ॥

सजल नयन कह जुग कर जोरी। सुनहु प्रानपति विनती मोरी॥

कंत राम विरोध परिहरहू। जानि मनुज जनि हठ उर धरहू॥

मंदोदरी बुद्धि को कहते हैं, जो मनको दोदती है-उत्प्रेरित करती रहती है। मंदोदरी ने अभी तक तो सुनकर जाना था राम के संबंध में। लेकिन जब राम के वाण से उनके कर्णफूल गिरे, मतलब कम्युनिकेशन हो गया। अन्दर से वाण रूपी वाणी मिल गई। तब इस मंदोदरी में-बुद्धि में-ईश्वरीय धारणा दृढ़ हुई। मंदोदरी यहाँ रावण से भगवान के विराट रूप का वर्णन करती है। उसे समझाने का प्रयत्नकरती है कि भगवान को मनुष्य की तरह न जानो। वह अलौकिक है। उसके स्वरूप को समझो। लेकिन रावण तो रावण ही है। कोई असर नहीं पड़ता उस पर।

दो.- फूलइ फरइ न बैत, जदपि सुधा बरसहिं जलद।

मूरख हृदय न चेत, जौ गुरु मिलइ विरंचि सम॥

इहां प्रातजागेरघुराई। पूछामत सब सचिव बुलाई॥

कहहु बेगि का करिय उपाई। जामवंत कह पद सिरुनाई॥

सुनु सर्वज्ञ सकल उरवासी। बुधि बल तेज धर्म गुन रासी॥

मंत्र कहउं निज मति अनुसाय। दूत पठाइयबालि कुमारा॥

इस तरह से यह सब अन्तःकरण के अवयव काम करते हैं। दोनों तरह के संकल्प और विचार मन के अन्दर आते रहते हैं। एक बार रावण का दरबार दिखाया। यह मोह मय विचार उठे मन के अन्दर। फिर राम के दरबार का चित्र आगया, तो यह उसी चित्त रूपी पर्दे पर सजातीय भावनाओं के चित्र हैं। दोनों बारी-बारी से आते-जाते हैं। यह संघर्ष चलता रहता है। फिर साधना की अन्तिम सीढ़ी पर, सातवीं भूमिका में जब इन राक्षसों को मार लिया जाता है-विजातीय समाप्त हो जाते हैं, तब वह झगड़ा खतम हो जाता है। राम राज्य हो जाता है। शांति मिल जाती है। तो अब बात आ गई कि- 'दूतपठाइय बालि कुमारा।'

अब देखो, वहाँ यह एक कला और होती है। फिर एक गियर लगाया गया। राम बोले कि यह रावण-ऐसा लगता है-कि कभी का मेरा भाई है। कभी इसने भक्ति तो किया है। पता नहीं क्यों, इसके प्रति मुझे दया आती है। ऐसा लगता है, कि इसे एक मौका और दिया जाय। इसलिये दूत भेजा जाय। तो यह सुनकर लक्ष्मण को आग लग गयी। मन में कहा कि दूत से काम नहीं चलेगा। लक्ष्मण ने कहा, 'इनका भंडाफोड़ कर देना चाहिये।' राम ने कहा, 'हाँ करना है। लेकिन पता नहीं क्यों ऐसा लगता है?' लक्ष्मण के अनुसार, 'व्यर्थ समय बिताना ठीक नहीं है, सीता माता की क्या दशा होती होगी? हमसे रहा नहीं जाता।' तो बोले हाँ, यह तो ठीक है, लेकिन मेरी ऐसी कल्पना है।' इस समय धैर्यवान होना चाहिये साधक को। जिसमें न शरीर के सुख की कल्पना, न और कोई इच्छा या कल्पना होनी चाहिये। नीति का सही ढंग से पालन करते हुये अनुसंधान करना चाहिये। तो फिर प्रश्न आया, कि किसे दूत बनाकर भेजा जाय? तो जामवंत ने कहा अंगद को भेजा जाय। अंगद जैसा दूत हो। जो हाजिर जबाब हो, वार्तालाप बढ़िया कर सके और हर चीज़ में कुशल हो, बलवान हो। ऐसा एक प्रयास हो। या तो हमारी शरण में वह आ जायेगा, या मरने लायक हो जाय। इतना हम अपना दायित्व और निभा लें।

तो अंगद को भेजा गया। जाते ही लंका में रावण का एक लड़का मिला। अंगद से बात ही बात में झगड़ गया। अंगद ने उसे पटककर मार दिया। ऐसे ही हनुमान ने भी मारा था रावण के लड़के को। तो लड़का कहते हैं लगन को। मैं, मेरा मैं जो लव लगी है-माया मोह में जो लगन लगी है-कई तरह से। यही रावण के ये लड़के हैं। अंगद है अनुराग। भगवान के लिए साधक के अन्दर जब तीव्र अनुराग आता है,

तो उधर संसार में जो लगन लगी है, वह मरती है। अनुराग के सामने ठहर नहीं पाती। विजातीय भावनाएं सब दब जाती हैं। तो देखो, जब अंगद ने मार दिया उसे, तो क्या होता है वहाँ ?

एक एक सन मरमु न कहहीं। समुझि तासु बध चुप करि रहहीं॥

भयउ कोलाहल नगर मझारी। आवा कपि लंका जेहि जारी॥

अब धौं कहा करिहि करतारा। अति सभीत सब करहिं विचारा॥

बिनु पूछे मगु देहिं देखाई। जेहि विलोक सोई जाइ सुखाई॥

सब भयभीत हो जाते हैं राक्षस। जब साधक के हृदय में तीव्र अनुराग आया तो फिर उधर राक्षसों का पक्ष कमजोर पड़ने लगा। यह साधना का परिणाम आने लगा। ऐसे धीरे-धीरे इनसे मुक्ति मिल जाती है। लेकिन डटे रहना पड़ेगा। पूरी लड़ाई लड़ना पड़ेगा। इसी का नाम भजन है। इसी का नाम साधना है। साधना में जैसे-जैसे प्रगति होती जाती है। साधक के अन्दर सजातीय पक्ष सबल होता जाता है। विजातीय पक्ष दुर्बल होता जाता है। अब देखो अंगद वहाँ तहलका मचाए है। तो ये सब साधक के अन्दर की बातें हैं। इनको आध्यात्मिक अर्थ में लेना चाहिए। बाहर ऐसा नहीं होता। अंगद कोई बंदर नहीं है। अनुराग है अंगद। साधन भजन का प्रमुख अंग है। 'मिलहिं न रघुपति बिनु अनुरागा।' इसलिए यह युवराज कहा जाता है। भगवान में सुरति लग जाती है—यह सुरति सुग्रीव है, राजा है। संसार से मन हट जाय ऐसा वैराग्य भाव ही हनुमान है। तो ये ज्ञान की पार्टी के बड़े-बड़े वीर बलवान योद्धा हैं। और वहाँ कहीं बंदरों की राजधानी नहीं होती है। ये सब अन्दर के सद्गुण हैं। जब सद्गुण बढ़ेंगे तो दुर्गुण दब जाते हैं। अनुराग के आवेश में साधक के सामने कोई बाधा, रुकावट नहीं डाल पाती। अंगद को वहाँ कोई रोकता-टोकता नहीं, बल्कि बिना पूछे रास्ता बताते हैं सब। ऐसा तत्व है—अनुराग। प्रतिकूल भावनाएं भी इसके प्रभाव में आकर अनुकूल बनने लगती हैं।

गयउ सभा मन नेकुन मुरा। बालितनय अतिरन बांकुरा॥

उठे सभासद कपि कहुं देखी। रावन उरभा क्रोध विशेषी॥

दो.— जथा मत्त गज जूय महुं, पंचानन चलि जाय।

राम प्रताप सुमिरिमन, बैठ सभासिठ नाइ॥

यहाँ यह समझना चाहिए कि ये जो विजातीय समाज है, यह देखने भर में भयंकर है। इनमें कोई दम नहीं है। साधना करने वाला साधक इनसे डरता नहीं है — अगर उसमें भगवान के लिए प्रेम आ जाय तो ये सब विरोधी संकल्प मन में

आएंगे ही नहीं। यद्यपि अभी उसके अन्दर इन राक्षसों का ही दरबार लगा है। बुराइयां भरी हैं। कहीं चले नहीं गए दुर्गुण। प्रेम के आवेश में दबे रहते हैं। लेकिन मोह नहीं दबेगा। वह बहुत प्रबल है। राजा है। तो अब अंगद और रावण की बातचीत होती है। एक तरफ सजातीय पार्टी का भारी बलवान तत्व अनुराग है, और दूसरी तरफ मोह विजातीय पार्टी का राजा। तो समझना चाहिए कि यह साधक के अन्दर का झगड़ा है। साधक के मन में जब ईश्वरीय अनुराग युक्त संकल्प उठते हैं, तब मानो अंगद बोला और वहीं उसी मन के अंदर मोह का संकल्प आ गया तो समझलो रावण ने डपट लिया अंगद को। तो ये दोनों तरह के संकल्पों का झगड़ा है। दो तरह के विचारों का संघर्ष है। हृदय दरबार है। एक बार संसारी भाव-मायामोह की बातें आती हैं, मन के अन्दर। फिर पलटकर भगवान की भक्ति के विचार आते हैं। ऐसा यह अंगद और रावण का वाद-विवाद हर साधक के अन्दर चला करता है - एक अवस्था ऐसी आती है।

दो.- जनि जल्पसि जड़ जंतु कपि, सठ विलोकु मम बाहु।

लोकपाल बल बिपुल ससि, ग्रसन हेतु सब राहु।।

पुनि नभ सर सम कर निकर, कमलन्ह पर करि बास।

सोभित भयउ मराल इव, संभु सहित कैलास।।

रावण को संसार की दृष्टि से ये जो सब टाइटिल दी गई हैं, उन्हीं का वह बार-बार बखान करता है। और अंगद जो ईश्वरीय क्षेत्र का तत्व है-अनुराग, वह भगवान की बात करता है। रावण अपना बल बखान करेगा। मोह का क्षेत्र है मैं-मेरा। तो वह तो इसी में रहेगा। अनुराग कहता है- तेरा, तेरा। सब भगवान का ? तो अब रावण कहता है कि ये मेरी भुजाएं निहारो, इन्हें देखो, जिनपर मैंने कैलाश पर्वत उठा लिया था और शंकर को खुश किया था। वह शंकर जानता है मेरी भुजाओं के बल को-मेरी क्षमता को। जैसे कोई पढ़ा लिखा आदमी है, वो कहेगा-तुम हमसे क्या बात करते हो, हमने एम.ए. किया है। तुम मैट्रिक नहीं पास हो। तुम हमसे क्या बात करते हो ? तो इसका कोई मतलब है क्या ? पढ़ाई लिखाई तो संसारिक बातों की कलाबाजी है। संसार में जो कृत्य हो रहे हैं। जो विशेष ढंग की बातें हैं, जो उच्च स्तर के कोर्सों में आती हैं। उसका भी कोई मतलब इसमें नहीं है। परमात्मा तो आलौकिक है। अंगद तो उसकी तारीफ करता है। जो सर्वत्र है व्यापक है कालातीत है। प्रकृति से परे है, जो काल अबाधित है। ऐसा जो तत्व है, उसकी तारीफ किये पड़ा है। और रावण क्या कर रहा है ? जो संसार में डिग्रियाँ मिली हैं,

उनको लिए बैठा है। वह कहाँ टिकेगा अंगद के सामने? रावन कहते हैं रोने वाले को। जो दिनों रात पैसे के लिए रोता रहता है। मेरे पास इतना धन हो जाय। इतना और हो जाय। और दसो इंद्रियों के साथ जो रोता है। वही है इंद्रियों रूपी दस मस्तकों को होम 2 कर, गरदन काट कर दे रहा है। अपने को समर्पित किये है संसार की तरफ। तो ये बाहरी डिग्रियाँ है। संसार की डिग्रियाँ हैं। तो इसका संपूर्ण नाम पड़ जाता है मोह, और मोह संसार क्षेत्र में सबसे उच्च पद है। यह मोह-यह मेरा है यह मेरा है-यही तो सबको बाँधे हुए है। इससे बड़ा माया क्षेत्र में कोई नहीं है। यह मैं मेरा ही तो माया है -

‘मैं अरु मोर तोर तैं माया। जेहि बस कीन्हे जीव निकाया।।’

इसलिये रावण अपनी तारीफ़ झाड़ता है। और अनुराग अंगद की बातों को ले लेकर उसे पराभूत कर रहा है। और वेवकूफ नालायक आदि डिग्रियाँ उसको दे रहा है। कैलाश कहते हैं काया को, इसका अधिष्ठाता शंकर है। रावण के द्वारा शंभु सहित कैलाश उठाने का मतलब है कि इस शरीर को मोह आच्छादित कर लेता है, अपने काबू में कर लेता है और आदमी इसी स्थूल जगत को सत्य मानकर उसी में सारा पुरुषार्थ लगाता है। और सिर काटकर चढ़ाने का अर्थ है स्थूल शरीर के लिए ही मरता कटता रहता है। बाहरी विषय सुखों के लिए जी जान लगा देता है।

जब रावण ने राम की निंदा किया तो अंगद को क्रोध आ गया - उसने गर्जना करके दोनों हाथ जमीन पर पटके। तो वहां सब डगमगा गए। रावण के सिर से मुकुट गिर गए। अंगद ने चार मुकुट राम के पास फेंक दिए। तो साधक में अनुराग का आवेश आने से साधक के मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार ये चारो मोह से विमुख होकर ईश्वरोन्मुख हो जाते हैं। मोह का रंग फीका पड़ जाता है।

जौ मम चरन सकसि सठ टरी।

फिर हिं राम सीता मैं हारी।।

इस तरह यह अंगद और रावण का झगड़ा वहां तक चला जब अंगद ने पैर जमा दिया और कहा-लो उठाओ मेरा पैर। अगर पैर उठ जाएगा तो मानो सीता को हम हार गए। तो यह तो होता ही है। अगर साधक के अंदर जो प्रेम है भगवान के लिए, वही न रहेगा, तो साधक की क्षमता चली ही जायगी। ईश्वर में न लगकर केवल संसार में लगी रह जायेगी। इसलिए अंगद ने यह बात ठीक कही है यहाँ। साधक में ऐसा अनुराग हो, जो कामादि विकारों के द्वारा डिगाया न डिगे। अडिग

रहे। साधना रूपी संग्राम में मोह के सामने ईश्वरीय अनुराग के पैर न उखड़ जायं यह जरूरी है। अन्यथा हारना पड़ेगा। साधक को अपनी क्षमता गंवाना पड़ेगा।

अच्छा, अंगद ने जब पैर जमा दिया। तो गोस्वामी जी कहते हैं कि संसार में हलचल मच गई। सब डांवाडोल हो गए, लेकिन देवता सब खुश हो गए। कौन डांवाडोल हो गए? राक्षस, जो माया क्षेत्र के आधार हैं। जो ईश्वरीय क्षेत्र के हैं, वो खुश हुए। साधक के अंदर भगवान के प्रति प्रगाढ़ अनुराग दृढ़ हो जाय, यही अंगद का पैर जमाना है। जब हृदय में ईश्वर का प्रेम जम गया, विजातीय पार्टी तो डांवाडोल होगी ही। अब उनका सफाया हो जाएगा-अन्दर के विषय विकारों का। इसलिए सजातीय खुश हुए। तो अब चिंतन और संकल्पों - विचारों के स्तर पर साधना पहुंच गई है। यह सब दृश्य-दरबार साधक के अन्तर्जगत का है, बाहर का इसमें कुछ नहीं है।

दो.- रिपुबल धरषि हरषि कपि, बालितनयबलपुंज।

पुलक शरीर नयन जल, गहे राम पदकंज॥

सांझ जानि दसकंधर, भवन गयउ बिल खाइ।

मंदोदरी रावनहिं, बहुरि कहा समुझाइ॥

मन्दोदरी, साधक की बुद्धि को कहते हैं। जो समझाती रहती है रावण को, मोहग्रस्त मन को। लेकिन वह मानता नहीं है, हठी है, जिद्दी है। मोह की पकड़ जल्दी छूटती नहीं। मन्दोदरी बार-बार समझाती है-तो बुद्धि का काम यही है। बुद्धि हमेशा सजातीय पक्ष में रहती है, लेकिन पराधीन है, मोह के। पत्नी बन गई है, रावण की। तो कितना भी सजातीय धर्म हो उसमें, परन्तु है तो रावण के अंडर (आश्रय) में ही। यह ऐसा होता है। परमात्मा रूपी पानी में, संसार रूपी बर्फ बन सकती है, यह नियमावली है-प्रकृति का कानून है। जैसे सोने का ज्ञान, जागने पर हो जाता है। लेकिन सोना पड़ेगा-वह छोड़ा नहीं जा सकता। जागने की क्षमता, हमें सोने से ही मिलेगी। यह नियमावली है। यह अनयोन्याश्रय दोष कहा जाता है - वेदान्त में। इसलिए मंदोदरी राम का पक्ष हमेशा लेती है, और पत्नी है रावण की। यहाँ गावों में जब लड़ाई हो जाती है लोगों में। तो स्त्रियाँ अपने-अपने पुरुष के साथ खड़ी होती हैं, पति के दुश्मन का पक्ष नहीं लेती हैं। तो बाहरी लड़ाई में कभी ऐसा नहीं देखा गया है। और गोस्वामी जी की रामायण में उल्टा है, कि स्त्री है रावण की और प्रशंसा करती है राम की। कहीं एक भी शब्द ऐसा नहीं पाओगे कि मंदोदरी कभी रावण का पक्ष लिये हो। राम के ही पक्ष की बात करती है। अब बाहर

तो ऐसा होता नहीं। स्त्रियाँ अपने पति का ही पक्ष लेती देखी जाती हैं। अगर दुश्मन का पक्ष ले कोई स्त्री, तो उसका पति उसे अपने पास रखेगा ही नहीं। तो इन बातों पर विचार होना चाहिए। मानस में ऐसे सैकड़ों प्रसंग हैं। जिन्हें बाहर से लेने पर, उनमें संगति नहीं बैठती है। तर्क आते हैं, जगह-जगह। समाज की गतिविधि से मेल नहीं खाते। इसलिए ये सब अन्दर की बातें हैं। अन्दर की बातों में हमारे मन-बुद्धि जल्दी नहीं जाते। बाहर हम रचे-पचे हैं। उसी के अनुरूप हमारे मन-बुद्धि ढल गए हैं। यह दुनिया भूलभूलैया है। इसमें जबरदस्ती ये रूप-आकार बन गए हैं। और हम इसी में फंसकर रह गए हैं। यह दुनिया भूलभूलैया वाला मकान है। जिसको गुरु (गाइड) से युक्ति मिल गई, वह तो इसमें से निकल पाता है। नहीं तो वहीं भरभटाता रह जाता है। तो भाई, इस दुनिया से अलग, एक दुनिया अपने अंदर की है। उसमें जिसकी समझ काम कर जाती है, वह फिर इस भूलभूलैया से निकल जाता है। गोस्वामी जी अपने अन्दर की दुनिया में विचरने वाले उच्च कोटि के महात्मा थे। इसलिए उन्होंने समझा और लिखा। अब हमें इसे समझने बताने में कोई दिक्कत नहीं आती, और तुम लोग जो नहीं समझते, उन्हें ये सब नट-बोल्ड बैठाने में दिक्कत आती है।

अब जब अंगद ने लौटकर सब समाचार बताए, तो युद्ध शुरू हुआ। राम की बानरी सेना ने आक्रमण कर दिया। चारों तरफ से घेर लिया लंका को। उधर हल्ला मचा तो रावण ने निशाचरी सेना भेजी। अब लड़ाई शुरू हुई। तो यह लड़ाई अपने अन्दर सद्गुणों - दुर्गुणों का संघर्ष है। अच्छे-बुरे संकल्पों का टकराव है।

इत रावण उतराम दोहाई। जयति जयति जय परी लराई॥

निशिचर शिखर समूह ढ्हावहिं। कूदिधरहिं कपि फेरिचलावहिं॥

आसक्ति लंका है। काया रूपी किला है। मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार ये चार द्वार हैं। बंदर तेज हो जाते हैं, ब्रह्मज्ञान ही ब्रह्मज्ञान छा गया है अन्तःकरण में। अनुराग रूपी अंगद और वैराग्यरूपी हनुमान ये दो प्रबल योद्धा हैं। इन सबके प्रभाव से राक्षस रूपी विकार मारे जा रहे हैं। फिर वे राक्षस भी जोर मारते हैं, तो कभी दबा ले जाते हैं बंदरों को। तो यह सब साधक के अन्दर सजातीय-विजातीय का संघर्ष चलता है। यह तब तक चलेगा, जब तक ये राक्षस-काम मेघनाद, क्रोध कुंभकर्ण और जो सबका मूल है मोह रूपी रावण-खतम नहीं हो जाएंगे। जब तक बिभीषण को राजा नहीं बना देंगे, रंक से राजा नहीं बना देंगे, जीव से परमात्मा नहीं बना देंगे,

तब तक यह युद्ध चलेगा। तो जब छठवीं भूमिका में पहुंच जाता है साधक, साधना करते-करते, तब यह युद्ध शुरू होता है।

ऐसे पढ़ने भर से काम नहीं चलेगा। यह अन्तर्जगत है-मानस है यह, अध्यात्म में इसका रूपांतरकरो, अपने मानस में इसको लेना पड़ेगा, तब इसका सही रूप बनेगा, तब इसका 'राम चरित मानस' नाम सार्थक होगा। राम के चरित्र मन से-मन से चरित्र करो। देखो, तब तुम्हें सब अर्थ मिल जाएंगे। इसलिए पहले आविष्कार तो करो, पहले खोज तो करो, अभ्यास तो करो, रिहर्सल (क्रियात्मक पूर्वाभ्यास) करो-साधना करो, तब तुम कामयाब होगे। अभी तो तुम नट-बोल्स ही नहीं बैठ पाते, अभी तो यह विस्तृत संसार रूपी समुद्र भरा है तुम्हारे सामने। जिसमें विषय रूपी अथाह जल भरा हुआ है। तो पहले संयम रूपी सेतु बनाओ-विषयों से संयम करो इन्द्रियों का। जब यह सेतु बनेगा तब यह पल्लव वहाँ पहुंचेगी, तब युद्ध होगा। तब साधना चलेगी। युद्ध ही तो है साधना।

अनिप अकंपन अरु अतिकाया। विचलित सेनकीन्ह निजमाया॥

भयउ निमिष महं अति अधियारा। वृष्टि होइ रुधिरपल छरा॥

दो. - देखि निविड़ तम दसहुं दिसि, कपिदल भयउखभार।

एकहिं एक न देखहिं, जहं तहं करहिं पुकार॥

कभी-कभी ऐसा होता है, कि जबतुम भजन में बैठते हो तो मन में पुरानी बातें याद आने लगती हैं। कहीं प्रेम है, तो उधर मन चला जायगा। कोई अनेक जन्म का पाप अन्दर बैठा है-वह बड़े वेग से टूट पड़ा। तो फिर न भजन में मन लगता है, न ध्यान में। सारा ब्रह्मज्ञान भुला जाता है। साधक की हालत खराब हो जाती है। यही सब अतिकाय, अकंपन बगैरह आफत मचाए हुए हैं। मन के अन्दर इन राक्षसों के द्वारा माया का अंधेरा कर दिया गया, अब ज्ञान के प्रकाश की एक किरण नहीं रह गई। ऐसी दशा जब साधक के अन्दर बनती है कभी, तो उसी का चित्रण है यहां। फिर हमारी सूझ-बूझ काम नहीं करती। यह बानरी सेना। यह सजातीय पार्टी हा-हाकार करने लगती है। त्राहि-त्राहि करने लगती है। साधन-भजन, ज्ञान-ध्यान सब भुला जाता है। कहा जायं, क्या करें, भजन होता ही नहीं-ऐसी हालत होती है कभी-कभी। यही है कि बंदर जहाँ-तहां लंगड़े हो गए, लूले हो गए, अंधे हो गए, आंखें काम नहीं कर रही हैं। मतलब विजातीय संकल्प और चिंतवन जब अन्तःकरण को छा लेते हैं, तो फिर वहां सजातीय विचारधारा निर्जीव जैसे हो जाती है। और विषय ही विषय का घना अंधकार छा जाता है। जब साधक के अन्दर यह कंडीशन

बनती है, बुद्धि काम नहीं करती, सूझ-बूझ काम नहीं करती, तो अब भगवान की मदद की जरूरत है। वही काम करेगी, जो अन्दर से अनुभूतिमयी वाणी मिलेगी।

सकल मरमु रघुनायक जाना। लिए बोलि अंगद हनुमाना॥

समाचार सब कहि समुझाए। सुनत कोपि कपि कुंजर धाए॥

पुनि कृपाल हंसि चाप चढ़ावा। पावक सायक सपदि चलावा॥

भयउ प्रकाश कतहुं तम नाही। ज्ञान उदय जिमि संसय जाहीं॥

जिसने पुरानी कमाई की है, पुण्य जमा किया है, फिक्स्ड डिपोजिट (स्थायी निधि) है अगर, तो वह यहां काम करेगा। वह भगवान बनकर बोलेगा। राम बनकर खड़ा हो जाएगा, और ध्यान रूपी धनुष में, जब अन्दर अनुभूतिमयी वाणी रूपी वाण संधान करेगा, तब यह माया का अंधेरा मिट जायगा।

‘भयउ प्रकाश कतहुं तम नाही। ज्ञान उदय जिमि संसय जाहीं।’

तब साधक के अंदर जागृति आती है। ‘अरे यह क्या, यह कहाँ हमारा मन जा रहा है? हमें क्या करना है?’ यह सब विवेक-दृष्टि काम करने लगी। ब्रह्मज्ञान मय विचार सक्रिय होगए। साधक पुनः बदलकर साधना में लग गया। और वह जो माया रच दी थी राक्षसों ने, वह खंडित हो जाती है। विपरीत विचार दब गए -

‘ज्ञान उदय जिमि संसय जाहीं।’ स्पष्ट कह दिया गोस्वामी जी ने। यह मानस की बातें हैं। ऐसी बातें जगह-जगह आती हैं। इन पर ध्यान देना चाहिए। यह मानस का रहस्य है। इसको जानने-समझने के लिए अपने अन्दर प्रवेश करना पड़ेगा। तब हमें ईश्वरीय क्षेत्र में कब्जा मिलेगा। संसार में डिग्री लेने से काम नहीं चलेगा, वाक्य ज्ञान में निपुणता काम नहीं करेगी। अनुभवज्ञान काम करेगा, कब्जा लेना पड़ेगा। संघर्ष करना पड़ेगा। लंकाकांड अपने अंदर रच लेना पड़ेगा और हर हालत में यह लड़ाई जीतना पड़ेगा। राम के लिए पराजित नहीं होना चाहिए, हिम्मत कच्ची नहीं करना चाहिए। भगवान हर कदम पर संभालते चलते हैं। इसलिए पटकनी खाते चलो, दुश्मनों को पटकते चलो। मन को शूर बना लो और डटे रहो -

‘कहे मंसूर मस्ताना, ये हक दिलसे मैने पहिचाना।

वही मस्तों का मयखाना, उसी के बीच आता जा॥’

तो हमारा मयखाना है, अपना हृदय-ईश्वर का इबादत खाना। जहाँ उसके प्रेम का नशा पी-पीकर यह हमारा मन, मंसूर बन जाता है। शूर वीर बन जाता है। काम, क्रोध, लोभ, मोह-इन सबको मार भगाता है। इसलिए उस नाशा की जरूरत है-ईश्वर की लव लग जाय, बस फिर विजय ही विजय है।

तो समझना चाहिए कि जब साधक संसारी चिंतवनों में फंस जाता है, विषयासक्त हो जाता है, तो अंधा हो जाता है और जब निर्विषय हो जाता है मन, तो प्रकाश हो जाता है। ज्ञान का प्रकाश मिल जाता है। अज्ञान ही अंधेरा है, ज्ञान ही प्रकाश है। ब्रह्मज्ञान में अनुगत विचार धारा में जो संकल्प हैं, वह बंदर कहे गए हैं, और विषयासक्ति में या अज्ञान में अनुगत विचारधारा में जो संकल्प उठते हैं-काम के, क्रोध के संकल्प-यही सब राक्षस हैं, इन दोनों की लड़ाई चलती रहती है। अन्दर का यह सब खेल भगवान देखते रहते हैं।

जब देखा कि बंदर परेशान हैं, तो राम ने अंगद और हनुमान को बुला लिया। मनमें अनुराग आ गया, वैराग्य आ गया। और वाणी मिल गई-यह अग्निवाण चल गया, प्रकाश हो गया। अब बंदरों का पक्ष सबल हो गया। तो यह सूक्ष्म जगत में-अन्तःकरण में, अच्छे-बुरे संकल्पों का उदीय मान होना और पराभूत होना चलता रहता है। ऐसी शैली से हर साधक को अपने अन्तःकरण में इन प्रसंगों का रूपांतरण कर लेना चाहिए।

उहां दसानन सचिव हंकारे। सब सन कहेसिसुभट जे मारे॥

आधा कटकु कपिन संहारा। कहहु बेगि का करिय बिचारा॥

माल्यवंत अति जरठ निसाचर। रावन मातु पिता मंत्रीवर॥

बोला बचन नीति अति पावन। सुनहु तात कछु मोर सिखावन॥

तो जब भजन में गति आई और साधक के अन्दर त्याग, अनुराग, ज्ञान, वैराग्य सद्गुण बढ़ गए, तो रावण जो स्वरूप है मोह का, वह कमजोर होने लगा। रावण की क्षमता टूटने लगी। तो फिर वह वैचारिक ढंग से अपने मंत्रियों को बुलाता है। कि भाई! हर स्तर पर हमने जो कब्जा कर रखा था, साधक के ऊपर-शरीर स्तर पर, इन्द्रियों पर, मनके स्तर पर कब्जा था हमारा-और विषय ही विषय का बाहुल्य बना दिया था। साधक के अन्दर मोह और आसक्ति की प्रबलता थी, विजातीय पार्टी सुसज्जित हो चुकी थी, विकार ही विकार भरे थे। तो ये सब ढीले कैसे पड़ गए? हमारी वह क्षमता कमजोर कैसे पड़ गई? विजातीय समूह में यह प्रश्न उठा, तो रावण का नाना वह माल्यवन्त बोला। नाना का मतलब है-नाना प्रकार के उपद्रवों में जो सलाह युक्त है, अनुशंसा युक्त जो भावना है। वह है माल्यवंत-रावण का मंत्री है। वैसे रिश्ते में नाना कहते हैं-माता के पिता को। लेकिन यह सब अन्तर्जगत की समाज है। ये सब राक्षस या दानव और देवता सब अनादिकाल से ऐसे ही हैं। कभी इनके नाम बदल दिए जाते हैं, किसी का वही नाम चलता रहता है। जैसे मय दानव

सतयुग, त्रेता, द्वापर सबमें मिलता है। तो ये दुर्गुण-सद्गुण दोनों अजर-अमर हैं। ये राक्षस और देवता दोनों ही ईश्वर का संरक्षण पाए हुए हैं। माया के दो रूप परमात्मा ने बनाए हैं-विद्या और अविद्या। ये दोनों परस्पर क्रियाशील हैं। तो विद्या क्षेत्र में काम करने वाले अवयवों को देवता या बंदर या सद्गुण कह दिया जाता है, और अविद्या वालों को दैत्य, दानव या राक्षस नाम दे दिया जाता है। साधक के अन्तःकरण में जो साधनात्मक प्रक्रिया चलती है, तो उसमें प्रसंग वश जरूरत पड़ने पर इनके नामों का उपयोग कर लिया जाता है - समझने बताने के लिए। तो जैसा जहां प्रसंग होता है, वैसे उनके नाम हो जाते हैं। अब ये प्रसंग साधक के अन्दर साधना की गतिविधि के अनुसार बनते हैं। जैसी गतिविधि जिसके अन्दर हुई। हर साधक की अपनी अलग एक चार्ट बन जाती है। काया करके भेद हो जाता है। 'कल्पभेद हरि चरितसुहाए।' कायाभेदही कल्प भेद है। अब जैसे महाभारत में व्यास जी की साधना का चार्ट है। रामायण में गोस्वामी जी की साधना का चार्ट है। देवासुर संग्राम एक अलग चार्ट है।

तो देखो यह जो श्वांसा चलती है शरीर में, यह स्वर्ग है। इस स्वर्ग पर देव और दानव दोनों अपना अधिकार चाहते हैं। इन्द्र कहते हैं मन को। इन्द्रियों में देवता जो हैं इनका एक समूह है। सद्गुण भी हैं इनके साथ। उधर इनके विरोध में दुर्गुण हैं। राक्षस कहो, चाहे असुर कहो या दैत्य कहो इन्हें। ये दो समूह हमेशा युद्धरत रहते हैं। बस कल्पभेद से इनके नाम बदल जाते हैं। काया भेद से अंतर आता है, लेकिन मूलतः झगड़ा सजातीय-विजातीय का है। यहां भी वही चीज है। राम की पलटन और रावण की पलटन का झगड़ा चल रहा है।

हाँ, तो माल्यवंत ने इतनी अच्छी सलाह दी रावण को, लेकिन उसने नहीं मानी उसकी बात। क्योंकि उसे हारना तो है नहीं, उसे तो नष्ट होना है। यही नियम है प्रकृति का। इसलिए दृढ़ता पूर्वक खूब बल-भरोसा देना चाहिए अपने मन को, कि हम डटे रहें। यह ऐसे मानने वाला नहीं है। चाहे अंगद को भेजो, चाहे हनुमान को भेजो, चाहे माल्यवंत कहे, चाहे मंदोदरी कहे, चाहे प्रहस्त कहे। कहने से ये मनके दोष जाएंगे नहीं। इन्हें तो नष्ट करना पड़ेगा। इनके ऊपर सजातीयों को हावी (प्रभावी) बनाना पड़ेगा। इनके द्वारा विजातियों को मिटाना पड़ेगा। यही लड़ाई लड़ना है-यही है साधना।

दो.- मेघनाद सुनि स्रवन अस, गढ़ पुनि छँका आइ।

उतर्यो वीर दुर्ग ते, सन्मुख चल्यो बजाइ॥

अब मेघनाद आ गया। इसका मतलब ऐसा है कि साधना करते हुए भी मन में काम वासना बड़ी सूक्ष्मता से प्रवेश कर जाती है। काम है मेघनाद। इसका वेग बड़ा प्रबल होता है। बड़े-बड़े ऋषि-मुनियों को भी यह परेशान कर देता है। सबको वश में कर सकता है। गोस्वामी जी कहते हैं -

‘काम कुसुम धनु सायक लीन्हे।

सकल भुवन अपने बस कीन्हे।।’

अब देखो वहां आते ही तवाही मचा दिया। तो यह साधक के अन्दर होता है सब।

सर समूह सो छड़ै लागा। जनु सपच्छ है लागहिं नागा।।

जहं तहं परत देखिअहिंनानर। सम्मुख होइ न सके तेहि अवसर।।

साधक के अन्दर काम वासना की आंधी तैयार कर दिया। काम के संकल्प तैयार कर दिया। विषय के संकल्प छा गए अन्तःकरण में। ध्यान में काम ही काम दिखाई पड़ने लगा। तो जब ध्यान विषय अनुगत हो गया, तो यही मेघनाद का धनुष है। और वाण हैं परावाणी। इसमें जीभ-होंठ नहीं हिलते, अन्दर ही अन्दर संकल्पों से कह डालते हैं। यह वाणी बड़ी सूक्ष्म होती है। यह शॉट वेव का काम करती है। उसकी गति बड़ी तीव्र होती है। रुकाए नहीं रुकती। इस प्रकार साधक के मन में पूर्व के किए हुए और वर्तमान के, सब मिलकर काम के संकल्पों का भारी प्रेशर आ गया। साधक काम भावना के प्रभाव में आ गया। अब ब्रह्म-ज्ञान के विचार, ये बंदर सब मारे गए। अन्तःकरण में विषय ही विषय छा गया। अनुराग-वैराग्य, ज्ञान-ध्यान, यम-नियम सब ढीले पड़ गए। कोई बचा नहीं। सब मेघनाद के वाणों से जर्जर हो गए। सजातीय संकल्प अब ऐसी अवस्था में साधक के अन्दर उठ नहीं पाते। इस तरह से यह काम रूपी मेघनाद का जब आक्रमण होता है, तो साधक की खटिया खड़ी हो जाती है।

जहं तहं भागि चले कपि रीछ। बिसरी सबहिं युद्ध कै ईछ।।

सो कपि भालु न रन महं देखा। कीन्हेसिजेहि न प्राण अवसेषा।।

दो.- दस दस सर सब मारेसि, परे भूमि कपि वीर।

सिंहनाद करि गरजा, मेघनाद बल धीर।।

ऐसे यह काम का वेग जब आता है मन के अन्दर, तो फिर साधन-भजन छूट जाता है, बड़े-बड़े नारद और विश्वामित्र जैसों को भी परेशान कर दिया इसने। मेघनाद ने सब बन्दर भालुओं को बेदम कर दिया। अब हनुमान आए उसका सामना

करने के लिए। तो विचार करो कि जब साधक के अन्दर काम का आवेश मन में, बुद्धि में, इंद्रियों में छा गया, अब उपाय क्या है, बचने का? इस मौके पर वैराग्य हीकुछ बचाव कर सकता है। वैराग्य है हनुमान। तो देखो गोस्वामी जी उसी को यहाँ लाए। अब देखो वह क्या करता है? ऐसी स्थिति में वैराग्य रूपी हनुमान कैसे काम करता है?

महासैल एक तुरत उपाय। अतिरिस मेघनाद पर डारा॥

आवत देखि गयउ नभ सोई। रथ, सारथी, तुरग सब खोई॥

बार-बार पचार हनुमाना। निकट न आव मरम सो जाना॥

हनुमान को बंदर के रूप में दिखाया गया है, साधक में जो वैराग्य का भाव है वह है हनुमान। उसमें बड़ी क्षमता है। और बंदर कहीं पहाड़ नहीं उठाते हैं। तो पहाड़ है पाप। पहले का कोई पाप जमा था, जिसके कारण साधक के अन्दर यह काम भावना पैदा हो गई थी। उस पाप-संस्कार रूपी पहाड़ को, अपने अन्दर की वैराग्य-वृत्ति ने उखाड़ फेंका। उस काम रूपी मेघनाद पर इस तरह से प्रहार किया। लेकिन वह उड़ गया, आकाश में गायब हो गया। मतलब इसका यह है कि हृदयाकाश में काम के संकल्प जो अभी तक भारी दबाव बनाए थे, वैराग्य मय संकल्पों के आने से उस क्षण गायब हो गए। क्यों ऐसा हुआ, क्योंकि जो पाप उसे बल दे रहा था, वह उखाड़ दिया गया वैराग्य के द्वारा।

हनुमान के प्रहार से मेघनाद के रथ, सारथी, घोड़े मर गए। तो साधक के अन्दर श्वास-श्वास में जो काम ही काम के संकल्प और चिंतवन प्रवाहित हो रहे थे, यह रथ टूट गया-काम के संकल्पों का प्रवाह रुक गया, वैराग्य के उदय होने से। उधर जो अवयव उस प्रवाह को चला रहे थे, वे निर्जीव हो गए-यह सारथी मर गया। और घोड़े, जो इंद्रियों आदि के रूप से उस काम भावना को वहन कर रहे थे-वे सब मृत-प्राय हो गए। अब काम को गति देने वाले सब खतम हो गए, तो वह गायब हो गया-आकाश में चला गया। तो ये सब काम, क्रोध लोभ, मोह मन के विकार छिप जाते हैं, और जहां मौका पाए फिर उभर कर आ जाते हैं। यह संघर्ष साधना करने वालों के अन्दर अनवरत चलता रहता है-साधक इसी में पिसे चले जा रहे हैं। लेकिन यह साधना बहुत अच्छी है। वास्तव में तो ये दोनों-सजातीय, विजातीय-निर्जीव हैं। आत्मा की क्षमता से सजीव हैं। ये सजीव वहाँ होते हैं, जहां सक्रिय साधना होती है। और वहाँ ये निर्जीव हो गए हैं, जहां साधन-भजन करने के लिए प्लानिंग (योजना) ही नहीं है। ऐसे अनेक लोग हैं, जिन्हें साधना से कोई मतलब नहीं रहता।

किसी-किसी के हृदय में यह जागृति आती है। जब भगवान महान कृपा करते हैं, तब इधर साधन-भजन की प्रवृत्ति बनती है।

‘अति हरि कृपा, जाहि पर होई।

पाउं देइ यहि मारग सोई।।’

जिस शरीर पर कृपा हुई-वहाँ, उसके अन्दर यह युद्ध होता है। साधना होती है, भजन होता है। साधना, युद्ध, भजन ये तीन नाम हैं, काम एक है। यह उसी भाग्यशाली के अन्दर होता है, जो ईश्वर को जानने के लिए-अपने स्वरूप को प्राप्त करने के लिए-प्रयासरत रहता है। जो ऐसा नहीं चाहता, उसके लिए साधना है ही नहीं। साधना व्यक्तिगत चीज है। जरूरी नहीं है कि सब लोग कर सकते हैं। यद्यपि सबके पास बुद्धि है, सबके पास साधन हैं, सबके पास तरीका है। लेकिन कमी क्या है, कि करते-नहीं सब। कोई बिरला ही करने की रुचि लाता है अपने में। रुचि की कमी है। इसलिए साधना करने वाले बहुत कम लोग हैं। सुनने वाले, कहने वाले बहुत हैं। तो यह साधना है पी.एच.डी. की पढ़ाई-इसमें अपनी रिसर्च खुद करनी पड़ती है। गाइड मदद करते हैं, लेकिन शोध का काम खुद ही करना पड़ता है। इसलिए डाक्टरेट (विशेषज्ञता) की डिग्री सब नहीं ले सकते। कोई-कोई कर पाते हैं। और प्राइमरी की पढ़ाई सब कर सकते हैं। तो साधना करना दूसरी बात है, और यह पूजा-पाठ, कथा-कहानी, यह प्राइमरी तो सब कर लेंगे। अब देखिए करोड़ों संख्या में सिपाही रहते हैं पलटन में, और प्रधान मंत्री का पद एक है देशभर में। तो यह साधना थोड़ा टफ (कठिन) है। पी.एच.डी. करना कठिन है जैसे। इसलिए यह साधना अलग है। और वह अलग है-जो जनरली भाव भक्ति करते हैं लोग।

हाँ ऐसे तो प्रधान मंत्री और सिपाही में कोई अन्तर नहीं है। आदमी वह भी है-वह भी है। प्रधानमंत्री भी खाना खाता है, सिपाही भी खाना खाता है। लेकिन अन्तर यह है कि वह एक है, सिपाही अनेक हैं। प्रधानमंत्री का पद बड़ा है, इसलिए उसका महत्व ज्यादा है। अब जैसे इंडिया भर में पाँच-छः सौ सांसद चुने जाते हैं-चुनाव में हजारों खड़े होते हैं। फिर उनमें से एक प्रधान मंत्री बनता है। ऐसे ही साधना में लगे हुए अनेक लोगों में कोई एक-दो ही सफल हो पाते हैं। तो यह काम ही ऐसा है, इसमें किसी का दोष नहीं है, यह स्वाभाविक नियमावली ऐसी बनी है।

पानी पहाड़ पर बरसेगा तो नीचे ही तो आएगा बहकर। यह हो नहीं सकता कि ऊपर की ओर बहे, नीचे को जायगा। ऐसे ही यह हमारा मन स्वभावतः विषयों में

जाता है। अब इस विषयोन्मुख मन को ईश्वरोन्मुख बनाना है। नीचे की ओर बहने वाले पानी को ऊपर की ओर ले जाना है। तो पंपिंगसेट लगाना पड़ेगा। ताकत से, युक्ति से जाएगा ऊपर। इस तरह से संसारोन्मुख मन को ईश्वर में ले जाने के लिए साधना करनी पड़ती है। इससे इनर्जी मिलती है। तो इस अधोमुखी मन को ऊर्ध्वोन्मुख बनाना है, इसे उल्टा कर देना है। जबरदस्ती करके इसे उल्टा चलाना है, नीचे से ऊपर की ओर पानी चढ़े। मन बाहर विषयों में न जाने पाए। नाम में लगे, अन्दर श्वासा में नाम जपे।

‘ओरिया का पानी बंडेरिया जाय।

तरे भई छानि ऊपर भई भीति।

लरका की गोद मा खेलै महतारी।

बूझौ बूझौ पंडित बाबा,

बरसै कम्बल भीजै पानी।।’

तो पहले इस मन को बाहर से उलट कर अन्दर श्वासा में लगाओ। ओरिया से बंडेरिया में चला जाय, उलटा कर लो। और जब श्वास-जप से कुंडलिनी जाग्रत हो जाएगी, तब फिर -

‘मे’दंड की सीढ़ी बनाकर शून्य शिखर चढ़ जाता है।’

भ्रमर गुफा में जाकर सोवै सुरता सेज बिछाता है।”

तो इस तरह से यह साधना की प्रक्रिया बिना सद्गुरु की कृपा के समझ में नहीं आती। बहुत बुद्धि के भरोसे काम नहीं चलेगा। अनुराग होना चाहिए, भाव होना चाहिए। भाव जो भगवान को प्राप्त कराता है-भाव वश्य भगवान-वह समर्पणभाव, अनुराग भाव। वह भाव रूपी भीति ऊपर रहे और जो बौद्धिक समझ और विवेक-विचार की क्षमताएं हैं, यह बाहरी क्षमता रूपी छानी नीचे आ जाती है। ऐसी यह साधना की नियमावली-हमारे ऋषियों मुनियों ने, संतों ने - जिन्होंने किया है उनबुद्धिमान लोगों ने - बनाई है। कुछ नियम बनाए हैं। उन नियमों को लेकर साधना करना ठीक रहता है। वही एक कल्याण का मार्ग है।

दो.- आयसु मांगि राम पहिं, अंगदादि कपि साथ।

लछिमन चले क्रुद्ध होइ, बान सरासन हाथ।।

तो यह लड़ाई सूक्ष्म जगत की है। वहाँ न कोई मरता है न जीवित होता है। वहाँ ये सब ज्यों के त्यों रहते हैं। और तोड़-फैसला पूरा हो जाता है। मरना जीना

यह सब स्थूल जगत के नियम हैं। यह मानस है। मानस या अन्तर्जगत में संकल्पों की समाज है। एक सजातीय संकल्प हैं, दूसरे विजातीय संकल्प हैं। इनका टकराव होता रहता है। जब साधना करते हैं, तब यह रहस्य समझ में आता है। इसे आन्तरिक गुप्त ज्ञान भी कहते हैं। इसे समझना चाहिए। अब जब इस काम रूपी मेघनाद ने साधक के अन्तःकरण रूप रण क्षेत्र में आफत मचा दिया तो अब विवेक रूप लक्ष्मण सामना करेगा। यह विवेक सजातीय पार्टी का सबसे ताकतवर योद्धा है।

नाना विधि प्रहार कर सेषा। राक्षस भयउ प्राण अवसेषा॥

रावन सुत निज मन अनुमाना। संकट भयउ हरिहि मम प्राणा॥

वीर घातनी छंडेसि सांगी। तेजपुंज लछिमन उर लागी॥

मुरुछ भई सक्ति के लागे। तब चलि गयउ निकट भय त्यागे॥

लक्ष्मण ने इतना घोर युद्ध किया कि मेघनाद को वेदम कर दिया। मरने लायक कर दिया। तब भी वह लड़ रहा है। तो अगर यह बाहरी युद्ध होता तो जिसका शरीर क्षत-विक्षत हो जाय, हाथ-पैर टूट जाय, अंग भंग हो जाय, तो क्या वह युद्ध कर सकेगा? वह तो सिकरिपोर्ट में चला जाएगा। लेकिन वहां तो मेघनाद इस हालत में भी वीरघातनीशक्ति का प्रेयाग कर रहा है। फिर लक्ष्मण को उठाने के लिए पहुंच गया। कहां तो प्राण छोड़ने को था, और यह सब भी कर रहा है। तो असल में यह लड़ाई संकल्प स्तर की है, अन्तर्जगत की लड़ाई है। मेघनाद है कामविकार और लक्ष्मण विवेक है। मन में विवेक रहेगा तो काम बासना मृतप्राय रहेगी। जब काम के-विषयबासना के-संकल्प उठेंगे मन में, तो विवेक मृतप्राय हो जाएगा। इस मन की कुर्सी पर एक ही बैठेगा-दोनों एक साथ नहीं रहेंगे एक ही समय। इसलिए यह ऐसे ढंग की लड़ाई है। बारीक बुद्धि लगानी पड़ेगी इसमें।

इस तरह से काम ने पूरी क्षमता (शक्ति) से प्रहार कर दिया तो विवेक स्वरूप लक्ष्मण मृतप्राय हो गया। यह तो होता ही है। कामवासना के आवेश में आदमी अपना विवेक खो बैठता है। तो अगर विवेक नहीं रह जायगा साधक के अन्दर, तो साधना कैसे चलेगी, यह युद्ध समाप्त हो जाएगा। इसलिए यदि साधना रूपी संग्राम जीतना है-इसमें सफल होना है अगर-तो विवेक को पुनर्जीवित करना पड़ेगा। जो कमजोर साधक होगा वह हार खाकर बैठ जाएगा। और जिसके पास जानकारी-जामवंत है, तो उसे ज्ञातरहता है कि ऐसी विषम परिस्थिति में सुखेन ही इलाज बताएगा। वैराग्य रूप हनुमान है, तो सब ठीक कर लेगा।

जामवंत कह वैद सुषेना। लंका रहइ को पठइय लेना।

अति लघुरूप गयउ हनुमंता। आनेउ भवन समेत तुरंता॥

दो.- राम पदार विन्द सिर, नायउ आइ सुखेन।

कहा नाम गिरि औषधी, जाहु पवन सुत लेन॥

सुख का अयन सुखेन-सुख का जो केन्द्र है - वह चेतन का प्रतिबिम्ब जब अन्दर पकड़ में आ जाता है, तो वह सब जानता है। वही बताता है कि हृदय रूपी हिमालय में मिलेगी वह जड़ी। वहीं है अजर-अमर बनाने की ताकत। मरे को जिलाने वाली संजीवनी अपने अन्दर-हृदय रूपी हिमालय में है। जो वहां पहुँचेगा, उसे मिलेगी संजीवनी। तो फिर मरा हुआ भी जीवित हो जाएगा। वह है मूल चीज। वह वैराग्य के बिना आ नहीं सकती। दूसरे की ताकत नहीं है, इसे लाने की। हनुमान बड़े वेग से चले हिमालय की ओर। तो इसका मतलब हुआ कि साधक के हृदय में वैराग्यभाव बड़ी तीव्रता से आया। लेकिन उसके मार्ग में बाधा डालने की गुंजाइश इस मोह रूपी रावण ने निकाली, और कपट रूपी कालनेमि को लगा दिया। कपट बहुत बड़ी खराबी है मन की। साधक की प्रगति में बाधा डाल देता है कपट। कपट रूपी कालनेमि के द्वारा बाधित हो जायगा, काल बाधित हो जाएगा, तो पहुँच नहीं पाएगा। विवेक रहेगा नहीं तो युद्ध ही बंद हो जाएगा। साधना रुक जाएगी। कहने का मतलब है कि साधना हमारी काल अबाधित हो, तब हमारा विवेक जाग्रत कहा जाएगा। विवेकवान साधक उसे माना जाएगा। और जो देश काल, परिस्थिति से बाधित साधना करते हैं, उनको बुद्धिमान नहीं कहा जायगा। उनका विवेक मरा ही है।

इस तरह से काल-अबाधित के लिए हनुमान जोर लगाए हैं। और कालबाधित करने के लिए कालनेमि उपाय रच रहा है। तो यह लंका काण्ड छठवां सोपान है - साधना की छठवीं भूमिका है - पदार्थ अभावनी। इस स्तर पर आकर साधक, स्थूल पदार्थों का अभाव कर देता है-सूक्ष्म जगत में रमता है। तो ये कथानक सब अन्तर्जगत की बातों पर आधारित हैं। इन्हें सही ढंग से समझते चलो।

अस कहि चला रचिसि मग माया। सर मंदिर वर बाग बनाया॥

मारुत सुत देखा शुभ आश्रम। मुनिहिं बूझि जल पियौं जाइ श्रम॥

राक्षस कपट वेष तहं सोहा। माया पति दूतहिं चह मोहा॥

कालनेमि कपट रूप से मुनि के वेष में मिला। लिखा है कि पानी पीने की गरज से गए हनुमान। फिर तालाब में गए, स्नान की बात आ गई। कहीं लिखा मिलता है क्या कि अंगद-हनुमान नहाते भी थे? फिर इतना टाइम कहाँ था? हनुमान तो ऐसा है कि -

‘राम काज कीन्हें बिनु, मोहिं कहां विश्राम।’

तो ये बाहर ऐसे कथानक बनाए जाते हैं। असली कहानी अन्दर की है। जब कोई साधक लगन के साथ जुटकर साधन-भजन करता है सूक्ष्म स्तर की साधना में प्रवेश कर जाता है, तो उसे अन्दर की गतिविधि पकड़ में जा जाती है। और जो भजन-साधन कुछ करते नहीं, उन्हें बारीक बातें समझने में दिक्कत आती है। इसलिए स्थूल में ही रह जाते हैं।

बताइए, अगर हनुमान को बंदर मान लिया जाय, तो पहले तो बंदर रात में चलते फिरते नहीं, न आकाशचारी होते हैं। फिर लंका से हिमालय तक जाना और लौटकर आधी रात में ही आ जाना-कैसे संभव है? इसलिए हनुमान अलौकिक है - लौकिक नहीं है। हनुमान कहते हैं वैराग्य को- “प्रबल वैराग्य दारुण प्रभंजन तनय।” विनय पत्रिका में लिखते हैं गोस्वामी जी। और,

“कालनेमि कलि कपट निधानू।”

कपट कालनेमि है। अध्यात्मिक क्षेत्र की बातें हैं। जब साधक भजन में लगा है - रामकाज में लगा है, तो फिर कपट नहीं रहना चाहिए। कपट रहेगा तो भगवान खुश कैसे होंगे - मिलेंगे नहीं। भगवान कहते हैं कि- ‘निर्मल मन जन सो मोहि पावा। ‘मोहिं कपट छल छिद्र न भावा।।’ इस लिए यह बाधा हट जाती है, तो मार्ग प्रशस्त हो जाता है। ऐसा इस प्रसंग का मतलब है। कपट बहुत बड़ी बाधा है भजन के रास्ते में। लेकिन यदि साधक प्रबल वैराग्य वाला है, वैराग्य वृत्ति वाला सही साधक है, तो वह हर बाधा को काटता चला जाएगा और अपने हृदय रूपी हिमालय में संजीवनी प्राप्त कर लेगा। कैसे कर लेगा? कि अन्दर श्वांसा में जब नाम जपने लगा, पश्यंती वाणी से जपने लगा, ध्यान करने लगा और जब ध्याता, ध्येय, ध्यान में एकतानता आई तो श्वासा खड़ी हो जाएगी। तो जड़ी मिल जायगी। चैतन्य हो जायगा। फिर वहाँ मरा जिया सब बराबर हो जाता है। सब ठीक हो जाता है। विवेक रूपी लक्ष्मण को बचा लिया जाता है। साधक के विवेक विचार में जो डिस्टर्वेस (व्यवधान) आ गया था काम के प्रभाव से, और विषय में लगकर वह डगमगा गया था-संभल गया। लेकिन इसमें कई तरह की बाधाएं भी आती हैं।

गहि गिरि निसि नभ धावत भयऊ। अवधपुरी ऊपर कपि गयऊ॥

दो.- देखा भरत विसाल अति, निसिचर मन अनुमानि।

बिनु फर सायक मारेउ, चाप स्रवण लागि तानि॥

परा विकल महि लागत सायक। सुमिरत राम राम रघुनायक॥

अवध यह शरीर है। इसमें अभी भाव रूप भरत राजा है। तो यह भाव बड़ा शक्तिशाली तत्व है अन्तःकरण का। भाव इतना प्रबल होता है कि यह चाहे तो भव की तरफ ले डूबे, और चाहे तो भगवान को साक्षात् खड़ा कर सकता है। नियम-कानून सबको ताक में रखकर ईश्वर को प्राप्त कर लेगा। चित्रकूट में इस भाव रूप भरत के सामने सब लाजवाब रह गए। जनक, वशिष्ठ और स्वयं राम भी हार मान गए। और राम को कहना पड़ा कि - 'भरत कहहिं सोइकिए भलाई।' गोस्वामी जी ने यहां तक लिखदिया कि -

‘भरत महामहिमा जलरासी। मुनि मति तीर ठढ़ अबला सी।।’

क्या हालत हो गई वहाँ वशिष्ठ जैसे त्रिकालदर्शी ऋषि की? इस तरह से भाव की महिमा बहुत बड़ी है। भाव ही भरत है, तो साधक के हृदय में जब त्याग-वैराग्य काम कर रहा है, और भाव इधर शरीर रूपी अवध का राजा बना है, तो उसमें इतनी क्षमता है कि उस वैराग्य रूप हनुमान के काम में रुकावट आई। तो फिर ग्लानि आती है कि मेरी क्या कंडीशन है? कि भगवान के काम नहीं आ रहा हूँ। भाई मृत्यु शैय्या पर है, मेरी भाभी (ईश्वरीय क्षमता) अरेस्ट (कैद) है। मैं भगवान के काम में बाधक बन रहा हूँ। तो वहाँ साधक के अन्दर साधना काल में ऐसी बातें आती हैं। कभी ऐसा होता है कि भाव वश साधक संसारी क्षेत्र में भी मदद करने लग जाता है। कोई सामने आकर खड़ा हो जाता है, तो उसमें भी भाव आ जाता है। आशीर्वाद दे दिया जाता है। लेकिन उधर वह ठीक होगा, तो इधर यह बिगड़ जायगा। यदि संसार की बात बन जाएगी तो अन्तर्जगत की बात बिगड़ जाएगी। यह नियम है। ऐसी समस्या कभी फंस जाती है, जो भरत और हनुमान के बीच फंस गई थी, अयोध्या में। लेकिन वैराग्य में क्षमता होती है तो बात बिगड़ने नहीं पाती। और वैराग्यवान साधक भाव में नहीं बह जाता। बाहरी व्यवहारों और संसारी संकल्पों में नहीं फंसता। जब भरत ने कहा कि मेरे वाण में बैठ जाओ, मैं तुम्हें अभी पहुँचाता हूँ, राम के पास, तो हनुमान बड़ी बुद्धिमानी से उस प्रस्ताव को ठुकराकर निकल जाते हैं। कहते हैं भरत से कि -

‘तव प्रताप उर राखि गोसाईं।

जैहउं नाथ वाण की नाईं।।’

प्रणाम करके चल पड़े। तो अगर संसारी भावनाओं में बह गए तो फिर साधक का वैराग्य सही नहीं माना जायगा। इसलिए तीव्र वैराग्य रूप हनुमान लाता है

संजीवनी। इस तरह से जब लक्ष्मण सजीव हो गए तो वहां रावण के दल में खलबली मच गई।

यह वृत्तन्त दसानन सुनेऊ। अति बिषाद पुनि पुनि सिर धुनेऊ॥

ब्याकुल कुंभकरन पहिं आवा। विविधजतन करि ताहि जगावा॥

जागा निसिचर देखिय कैसा। मानहुं काल देह धरि वैसा॥

अब रावण ने कुंभकर्ण को जगाया। साधक के अन्तःकरण में सजातीय-विजातीय संकल्प आते-जाते रहते हैं। क्रोध है कुंभकर्ण। बहुत बड़ा दुर्गुण है। गीता में काम, क्रोध, लोभ ये तीन नरक के द्वार कहे गए हैं।

‘त्रिविधं नरकस्येदम् द्वारं नाशनमात्मनः।

कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मात्तत्त्रयम् त्यजेत॥’

गोस्वामी जी कहते हैं -

‘लखन कहेउ हंसि सुनहु मुनि, क्रोध पापकर मूल।

जेहि बस जन अनुचित करहिं, चरहिं विश्व प्रतिकूल॥’

आदमी को जब क्रोध आ जाता है तो वह अंधा हो जाता है। न ज्ञान रह जाता है, न बुद्धि काम करती है, न विवेक काम करता है। क्रोध फिर रुकाया नहीं रुकता, कंट्रोल में नहीं आता।

लेकिन क्रोध कभी-कभी जागता है, हमेशा नहीं रहता। सोया ही रहता है। जैसे कुंभकर्ण छः महीने सोता था-एक दिन के लिए जागता था। और जब जागता था तो भयंकर तवाही मचा देता था। क्रोध में यही सब होता है। कुंभकर्ण क्रोध का रूप है। विजातीय पार्टी का सबसे शक्तिशाली और भयंकर योद्धा है यह। तो रावण ने जगाया उसे। वहाँ लंका में नहीं- यहां अपने अन्दर देखना है। यह रामचरित मानस है। मानस की कथा है। मानस मूल है इसका - तो मूल को पकड़ो, मानस में इसके अर्थ को लेकर चलो-

‘रहिमन मूलहिं सींचिए, फूलै, फरै, अघाय।’

मूल साधन है मानस इसलिए मूल चीज को पकड़ना चाहिए। बाहरी अर्थ भी लिया जाय लेकिन इसी में न रह जाओ, इसे लेकर मानस में चले जाओ। गहराई में डुबकी लगाओ। प्राइमरी की पढ़ाई करनी है, इसलिए कि आगे एम.ए. तक की पढ़ाई करनी है। यही मानस-बोध यदि कर लिया जाय तो अपने अन्तःकरण की गतिविधियों को समझा जा सकता है। और यह मानव एक इकाई है संसार की। तो फिर यदि

अपने अन्तःकरण की गतिविधि का ज्ञान हो जायगा, तो सबके अन्तःकरण की गतिविधि का ज्ञान हो जायगा। संसार की गतिविधि का ज्ञान हो जायगा। सार्व भौमिक ज्ञान हो जाएगा। यही ज्ञान, ज्ञान कहा जाता है। इसलिए जो लोग साधना करने में रुचि रखते हैं, उनके लिए तो तुलसीदास गुरु हैं। सीखने वाले उनसे बहुत कुछ सीख सकते हैं। उनके लिए यह राम चरित मानस एक नजीर है, सुप्रीम कोर्ट लेबल की, अन्तर्जगत की एक रुलिंग है। कानूनी डाकूमेंट है अन्तर्जगत पार्लियामेंट का। इसका ज्ञान होना चाहिए। मानस-बोध होना चाहिए।

इसलिए इसको पढ़ने की जब भी रुचि हो तो खूब विचार करना चाहिए और मन ही मन भगवान से खूब प्रार्थना करना चाहिए, कि हे भगवान ! हमें सद्बुद्धि दीजिए जिससे आपके चरित्र हमारे शरीर के अन्दर-हमारे मानस में-कैसे होते हैं, हम समझ सकें। यह मानव काया ही कल्प है। हर काया में राम रम रहा है - चरित कर रहा है। इसलिए, 'कलम भेद हरि चरित सुहाए।' करोड़ों शरीरों में चरित्र कर रहा है। इसलिए 'रामायण शत कोटि अपारा।' जितने मनुष्य हैं; सब एक-एक रामायण हैं। 'राम अयन स रामायन।' अयन कहते हैं घर को। हमारे अन्दर, तुम्हारे अन्दर, सबके अन्दर, राम आत्मा के रूप में निवास कर रहा है। इसलिए हर मनुष्य रामायण है। राम का अयन है।

अयना या आइना कहते हैं दर्पण को। जैसे आइना में मुख देख लेते हैं, वैसे ही हमें अपने अन्दर मन के दर्पण में राम का रूप-आत्मस्वरूप को देखना चाहिए। लेकिन देख नहीं पाते। क्यों नहीं देख पाते, क्योंकि हमारे इस मन रूपी आइने में मैल जमा है। विषय रूपी काई लगी है इसमें -

‘काई विषय मुकुर मन लागी।’

और इसलिए भी नहीं देख पाते, कि विवेक रूपी आंख नहीं है। गोस्वामी जी कहते हैं -

‘मुकुर मलिन अरु नयन विहीना। राम रूप देखहिं किमि दीना।।’

तो अगर मन को निर्मल कर लिया जाय - निर्विषय कर लिया जाय, और गुंथ की कृपा से विवेक रूपी नेत्र मिल जायं, तब देख सकते हैं। लेकिन अभी एक बड़ी भारी अड़चन यह है कि - ‘दिलदार यार मेरा परदे में छिप रहा है।’ वह छिपा बैठा है, परदे के पीछे। अविद्या जनित मल, विक्षेप, आवरण के परदे हैं बीच में -

‘हृदय जवनिका बहु विधि लागी।’

यह परदे हटाए बिना वह दिखाई पड़ नहीं सकता। तो इन्हीं सबके लिए साधना करनी पड़ती है। इसी के लिए यह ज्ञान-ध्यान सब बनाया है महात्माओं ने। हर आदमी को दिखाई पड़े कि अन्दर राम है। तब उसीका नाम है रामायण। न कि कोई कागज। कागज को हम पीठ पर लादकर घूमें तो क्या लाभ मिलेगा? लाभ तो तब समझा जाय, जब इस काया में बैठे अपने राम को हम देख पावें, और इसे राम का अयन बनावें। तब यह रामायन सिद्ध होगी। रामायन के इस रहस्य को समझना बहुत जरूरी है, हर आदमी के लिए। और समझ में आ जाय तो फिर साधना करो। युद्ध करो। यही तो युद्ध है राम-रावण का। सबके अन्दर हो रहा है। साधना करने वालों के अन्दर स्पष्ट रहता है। जो साधना नहीं करते, बाहर-बाहर देखते हैं, उन्हें समझ में ही नहीं आएगा।

तो यह मन जन्म-जन्म से विषय रूपी कर्ज खाए हुए है माया का। उस कर्ज का दबाव आ जाता है। पुण्य कर्म करके कर्ज चुकाया नहीं। तो वह माया फाँसी लगा देती है। क्रोध-कुम्भकर्ण पैदा हो जाता है, काम-मेघनाद पैदा हो जाता है। फिर जो अपना साथ देने वाले हितैषी हैं - विवेक, वैराग्य, यम, नियम, इन सबको मार-मार कर बेदम कर देते हैं वे सब राक्षस? जब भजन-ध्यान सही ढंग से होता है, तो ये सजातीय बलवान बन जाते हैं। राक्षसों को मारते हैं। यह युद्ध अपने अन्दर होता है। दोनों में हार-जीत होती रहती है। कभी इधर रुलाई होती है, तो उधर हंसाई होती है। कभी उधर रुलाई होती है, इधर हंसाई होती है। जिसने जोर लगाया भजन में, उसके यहां राम की विजय होती है। जो साधक भजन-साधन में ढिलाई करते हैं, उनके अन्दर के ये राक्षस मराए नहीं मरते। ऐसे इसे समझो और करो। शास्त्रों को बांधकर गधे की तरह पीठ पर लाद लें, और उनमें जो विज्ञान है, उसमें घुसें नहीं, उसे समझें नहीं और प्रैक्टिकल कुछ करें नहीं, तो कैसे काम चलेगा?

दो.- सुनि दसकंधर बचन तब, कुंभकरन बिलखान।

जगदम्बा हरि आनि सठ, अब चाहत कल्याण॥

भल न कीन्ह तैं निसिचर नाहा। अब मोहि आइ जगाएहि काहा॥

अजहूं तात त्यागि अभिमाना। भजहु राम होइहि कल्याणा॥

जो रावण के पक्ष के लोग हैं, वे भी सब रावण को गलत कहते हैं। विभीषण, मंदोदरी, त्रिजटा, माल्यवंत, प्रहस्त, मारीच, कालनेमि और कुंभकर्ण ने भी रावण को अन्यायी बताया। कुम्भकर्ण ने, राम को भगवान माना और राम की शरण में जाने के लिए विभीषण को धन्य-धन्य कहा, फिर भी रावण के पक्षसे लड़ा। तो यह ऐसा है

कि ये सब देव और दानव, भगवान के हैं। भगवान की शक्ति के दो रूप हैं। एक विद्या, दूसरी अविद्या। विद्या क्षेत्र में देवता हैं-सद्गुण हैं। अविद्या में राक्षस या दुर्गुण हैं। हैं दोनों उसी माया में। भगवान के हैं ये सब, इसलिए उसको मानते हैं, उसी की गाथा गाएंगे सभी। स्वयं रावण ने भी माना, लेकिन शत्रुता रखी राम से। क्योंकि विद्या और अविद्या, इनमें प्रतिकूलता होते हुए भी दोनों मूलतः एक हैं। अब होता क्या है इसमें, कि एक दूसरे की पूर्ति करने के लिए इन्हें एक दूसरे के विपरीत हो जाना पड़ता है। रात के बिना दिन का ज्ञान नहीं होगा। दिन के बिना रात का ज्ञान होगा नहीं। तो रात और दिन अलग-अलग दो चीजें नहीं हैं। विचार करो कि दो चीजें जो भिन्न होती हैं उन्हें एक ही समय एक जगह लाया जा सकता है। लेकिन रात और दिन एक साथ एक जगह पर नहीं देखे जाते। इस तरह ये दो नहीं हैं, एक ही हैं। इसलिए रोना भी वही है। हंसना भी वही है। यह जो भिन्नता है इनमें, इसे वेदान्त में अन्योन्याश्रय दोष कहते हैं। जो अल्पज्ञ हैं, ब्रह्मविद्या में पारंगत नहीं हैं, सद्गुरुओं का सत्संग नहीं किए हैं, उन्हें ये बातें समझने में दिक्कत आती है।

दुनिया में ये दोनों रहेंगे। सत्य रहेगा-असत्य रहेगा। सुख-दुख दोनों रहेंगे। एक हो नहीं सकता दूसरे के बिना, क्योंकि मूलतः एक हैं। इसलिए दोनों को रहना ही पड़ेगा। जब दोनों को बायकाट करके सर्कुलेशन से बाहर हो जाता है, तब परमात्मा को पा जाता है। यही एक मुक्ति का मार्ग है। सीधा राजमार्ग जो परमात्मा की तरफ ले जाता है। समत्व का सिद्धान्त। यह महात्माओं का मार्ग है। और जब लाभ हम चाहें, हानि न चाहें, तो यह तो सब लोग चाहते हैं। यह है दुनियादारी-यह महात्माओं का काम नहीं है। महात्मा तो देखता है - 'निन्दा-स्तुति उभय सम'। इसलिए दो न देखो-दो को एक करके देखो -

‘सुनहु तात माया कृत, गुन अरु दोष अनेक।

गुन यह उभय न देखिए, देखिय सो अविवेक।।’

व्यापक दृष्टि डालो। अल्पज्ञ दृष्टि से भेद तैयार होते हैं। तो इसको यों समझो कि सद्गुण भी भगवान की माया से पैदा, हुए हैं, दुर्गुण भी उसी माया से पैदा हुए हैं। एक विद्या माया से एक अविद्या से। दोनों में संचार तो परमात्मा का है। देव और दैत्य एक ही पिता से हुए-दो माताओं से। इसलिए उसे तो दोनों जानेंगे। उसी को दोनों मानेंगे। परमात्मा को तो भर्जेंगे ही। लेकिन प्रकृति के कानून के अनुसार कर्तव्य अपना-अपना करेंगे। कार्यक्षेत्र में तो कुंभकर्ण रावण के साथ ही खड़ा होगा। तो ये देवता और राक्षस एक ही हैं। अब जिनको सद्गुण कहते हैं, देवता कहते हैं, उनको

देखो। सब भगवान की खूब स्तुति करते रहते हैं, लेकिन काम, क्रोध आदि जितने दुर्गुण हैं-उनको अपने हृदय में बैठाए रहते हैं। वेश्याएं नचाते हैं, स्वर्ग में ऐश्याशी-बेइमानी, बदमाशी सब करेंगे। भोगों में लिप्त रहेंगे। इच्छाओं के आधीन रहेंगे, इसलिए मार खा जाएंगे दैत्यों से। तब फिर हाय हाय करेंगे। पुकार लगाएं-‘भगवान रक्षा करो-रक्षाकरो-रक्षाकरो।’ ‘इसलिए अच्छा-बुरा कुछ नहीं है। यह मात्र दुनिया का सर्कुलेशन है। इससे बाहर होने में ही कल्याण है।

तो मारीच, कालनेमि, कुंभकर्ण सबने राम की तारीफ किया और राम के खिलाफ लड़लड़कर मर गए। मरे तो भगवान ने सबको अपने में लीन कर लिया। तो क्या मतलब रह गया? अच्छा-बुरा उस जगहपर एक हो जाते हैं। हाँ दुनिया में अच्छा-अच्छा है; बुरा-बुरा है। भगवान का यही मापदण्ड है कि वहाँ भेद नहीं अभेद रहेगा, द्वैत नहीं अद्वैत रहेगा।

पुनि नल नीलहिं अवनि पछारेसि। जहं तहं पटक पटक भट डारेसि।

चली बली मुख सेन पराई। अति भय त्रसित न कोउ समुहाई॥

दो. - अंगददादि कपि मुछित, करि समेत सुग्रीव।

कांख दाबि कपिराज कहुं, चला अमित बलसीव॥

इस तरह कथा बांचने से कुछ नहीं होता। कथा की एडजस्टिंग करनी पड़ती है। कुंभकर्ण अकेले सब बंदरों को परत किए है। कुंभकर्ण क्रोध का रूप है। तो जब क्रोध का आवेश आता है, तो शरीर में कंपन होने लगता है - यह धड़-धरती हिलने लगती है कुंभकर्ण के चलने से। फिर कोई अच्छे विचार नहीं रह जाते-ये सब बंदर भागने लगे। अनुराग, वैराग्य, सुरति, धर्म, नियम ये अंगद, हनुमान सुग्रीव, नल, नील, सजातीय पार्टी के जितने बड़े-बड़े सद्गुण रूप बंदर हैं, सबको बेदम कर देता है यह क्रोध रूपी कुंभकर्ण। अच्छे संकल्प और विचार अंतःकरण में ठहरते नहीं क्रोध के कारण। बंदरों में भगदड़ मच गई। सुरति रूपी सुग्रीव को कांख में दबा लिया। तो जब क्रोध अन्दर जाग्रत होता है तो सारा ज्ञान-ध्यान और ईश्वरीय गुण-धर्म विलुप्त हो जाते हैं। क्रोध का प्रभाव इतना प्रबल होता है कि आदमी पागल पड़ जाता है - उचित अनुचित सब मूल जाता है।

जब साधक साधना में आगे बढ़ता है, तो उसके अन्दर के दुर्गुण उभरने लगते हैं - कभी काम, कभी क्रोध, कभी ईर्ष्या, कभी द्वेष - तो उसको बाधा आती है। साधक का अनुराग-वैराग, नियम-संयम ढीला पड़ने लगता है। ऐसा यह झगड़ा है। इसे चुनौती मानकर जो साधक लेता है, और धैर्य के साथ काम-क्रोध के वेग को सहन

करता है। इन बाधाओं को काटकर आगे बढ़ जाता है-वह लक्ष्य को पाता है। और कमजोर वाले फेल हो जाते हैं-मैदान छोड़ देते हैं। डटे रहना चाहिए, तो फिर दुर्गणों की पल्टन हार खा जाती है, इसी में बहादुरी मानी जायगी -

काम क्रोध को मार भगा दे जड़ जाणू थारी रजपूती।'

हरि भज हरि भज हीरा परख ले समझ पकड़ नर मजबूती।।'

तो यह युद्ध अपने अन्दर देखना है। ऐसे नहीं कि लंका वहां रही वह कोलम्बो वाली, और वहां भारी राक्षस कुंभकर्ण खड़ा है पहाड़ जैसा, मारे-खाए जा रहा है बंदरों को। तो इस अर्थ से इस कल्पना के चित्र से कुछ मिलने वाला नहीं है। असली चीज यह है कि इस चित्र की क्रिया बनी हुई है-अन्तःकरण में। वह पकड़ में आ जाय, तब सही तरीका माना जाएगा। इसको एडजस्टिंग कहते हैं। फिर यह बाहर नहीं बनेगा चित्र, अन्दर बनेगा। तब सही अर्थ माना जाएगा। इसका खूब अभ्यास करो-मानस में आ जाय यह राम चरित्र। तब इसे कहते हैं - राम चरित मानस।

अभ्यास करो, अभ्यास से धीरे-धीरे समझ काम करने लग जाती है। जैसे बच्चा पैदा होता है तो छोटा सा रहता है। फिर बढ़ते-बढ़ते पूरा आदमी बन जाता है। ऐसे ही समझ बढ़ती चली जाती है। इसमें बाहरी पढ़ाई लिखाई की बहुत जरूरत नहीं है।

'करत करत अभ्यास के, जड़ मति होत सुजान।

रसरी आवत जात ते, सिल पर परत निशान।।'

इसलिए लगे रहो। इससे अच्छा सौभाग्य और समय कहां मिलेगा। आज आग लगी है, संसार में अशान्ति मची हुई है। यहाँ कोई आपत्ति नहीं, कोई दिक्कत नहीं, कोई बलात्विघ्न नहीं। शान्ति से जो आदेश हो सेवाकरो, मन से भगवान का शाम-सुबह नाम लिया करो। और जो वाणी टूटी फूटी निकलती है, उसे सुना करो। इससे अच्छा और कोई साधन नहीं है। अन्यत्र कहीं जाओगे भूल-भटक जाओगे। हर जगह नियमानुकूल साधन-भजन नहीं किया-कराया जाता। ऐसे ही सद्गुरुओं की शरण में, जहाँ सत्य की वर्षा होती है, सत्य का जीवन है, सत्य का प्रभाव है, जहाँ असत्य संस्कारों को हटा दिया गया है, उस दायरे में रहने से ही कल्याण का मार्ग प्रशस्त होता है।

हाँ रगड़ करनी पड़ेगी। उथल-पुथल की जरूरत नहीं है। जरूरत है - डटने की। शरीर चाहे गल जाय हमारा-क्या मतलब है शरीर से? हमें तो जो चीज लेना है, हमें उससे मतलब है। भगवान देखे शरीर को, वह चिन्ता करे हमारी। हम तो समर्पित हो चुके हैं। हमें मन का कहना नहीं करना, हमें तो भगवान का कहना

करना है। हम जिसके यहाँ एडमिट हो चुके हैं, जिसके हाथों बिक चुके हैं, हम उसके बनकर रहेंगे। तो जो साधक ऐसे सिद्धान्त पर चलते हैं, चलना चाहते हैं, उन्हें यह प्रैक्टिकल अर्थ करना चाहिए, रामायण का। और उसे क्रिया में लेना चाहिए। यह सब हम साधकों के लिए बता रहे हैं।

मुरुछ गइ मारुत सुत जागा। सुग्रीवहिं तब खोजन लागा॥

सुग्रीवहुं कैमुरुछ बीती। निबुकि गयउ तेहिं मृतक प्रतीती॥

काटेसि दसन नासिका काना। गरजि अकास चलेउतेहि जाना॥

गहेउ चरन गहि भूमि पछरा। अति लाघव उठि पुनि तेहि मारा॥

हृदय में क्रोध की प्रबलता से, जो वैराग्यवृत्ति दबी हुई थी, वह अब फिर जाग्रत हुई-हनुमान की मूर्छाजागी। तो जैसे ही अन्दर वैराग्य जागा, तो झट से सुरति क्रोध से अलग हो गई। सुरति रूपी सुग्रीव कुंभकर्ण की कांख से निकल गया। वैराग्य के आने से साधक को व्यग्रता होती है कि मेरी सुरति कहां अविद्या क्षेत्र में फंस गई थी-तो सुरति पुनः ईश्वरीय कर्तव्य में लगी उधर से हटकर। यही है कि सुग्रीव ने कुंभकर्ण के नाक कान काट लिए? क्रोध को तिरस्कृत करके साधक ने सुरति को ईश्वरीय कर्तव्य में लगा दिया। इस तरह से क्रोध के आने से साधक के अन्तःकरण में सजातीयभाव जो निष्क्रिय हो गए थे, जब वे पुनः सक्रिय हो गए। अब उधर क्रोध के संकल्प कमजोर पड़ जाएंगे धीरे-धीरे। भगवान मदद कर देंगे। तो ऐसे यह चलता है, अन्दर ही अन्दर।

दो.- जय जय जय रघुवंसमनि, धाए कपि दै हूह।

एकहिं बार तासु पर, छाडहिं गिरि तरु जूह॥

कुंभकरन रन रंग विरुद्धा। सनमुख चला काल जनु क्रुद्धा॥

कोटि कोटि कपि धरि धरि खाई। जनु टीडीगिरि गुहा समाई॥

ये बंदर ब्रह्मज्ञान मय संकल्प हैं। एक-एक मिनट में हजारों संकल्प और चिंतवन आते-जाते रहते हैं। ये अजर-अमर होते हैं। वाणी में ओम् आया। एकाक्षर ब्रह्म का संकल्प और चिंतवन की धारा है। अन्दर यह पोल है आकाश। इसमें शब्द है, वाणी। यह अजर अमर होता है शब्द। तो यह सूक्ष्म जगत के अवयव हैं। क्रोधरूपी-कुंभकर्ण इन्हें खाता है, ये फिर निकल भागते हैं। तो क्रोध के आवेश में सजातीय भाव विलीन रहेंगे और फिर उठेंगे। नाश नहीं है इनका। यह मरना-जीना स्थूल में होता है। ये संकल्प सब आकाशवत होते हैं। आकाश में व्यापक भाव से शब्द रहता है-संकल्प या परावाणी। इसका नाश नहीं होता कभी। यह शब्द ब्रह्म की अवधारणा

हमारे ऋषियों मुनियों की महान देन है। 'ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म'—यह शब्द ब्रह्म का स्वरूप है। यह व्यापक है, अनन्त है, अविनाशी तत्व है। यह निरवयव समाज है, संकल्पों की। ये कहीं भी जाते हैं मरते नहीं। हमारे यहां नहीं रह जाएंगे—तुम्हारे यहाँ चले जाएंगे। हजारों के यहां रावण है, हजारों के यहाँ कुंभकर्ण है। हजारों के यहाँ वैराग्य है, हजारों के यहाँ अनुराग है। इसी रामायण में आता है कि कागमुसुंडि जब राम के पेट में गया, तो वहाँ सृष्टि देखी। नाना ब्रह्मा, नाना विष्णु, नाना शंकर। सब भिन्न-भिन्न रूपों में देखे गए। तो ये विज्ञान की बातें हैं। सबके शरीर अलग-अलग हैं। प्रकृति भिन्नता है सबमें। लेकिन आत्मा एक है—'राम न देखेउं आन।' वह निर्लेप, अविनाशी, एकरस आत्मा आकाशवत् है। गीता में कृष्ण कहते हैं कि जो इस तरह आत्मा के रूप में मुझे जान लेता है, वह मेरा ही रूप बन जाता है। रामायण में भी आया है— 'जानतुमहिं तुमहिं ह्वै जाई।' फिर उसमें और मुझमें भेद नहीं रह जाता

-

‘सो तैं ताहि तोहि नहिं भेदा।’

अब बिचार करो कि भेद क्यों है ? तो यह भेद तो हमने ही तैयार किया है। यह मैं हूँ फलां आदमी। यह शरीर मेरा, यह मकान मेरा। इस तरह से पदार्थों को अपना लिया है, भगवान को छोड़ दिया है। अब इन्हें छोड़ो, उसे पकड़ो। आत्मा जो पोल है—आकाशवत्। बस वही हो। तुम। सर्वत्र एकरस, निर्लेप रहो। मस्त रहो, उसी में झूमते रहो। और अगर पदार्थों में ही रमते रहना है, तो भव सागर में आ गए। भव रोग में फंस गए। तो फिर दवा करो। सद्गुरुओं के पास मिलेगी इसकी दवा। वही तो हम बता रहे हैं। करोगे तो लाभ होगा। दवा का सेवन तो करना पड़ेगा, सुनने भर से फायदा नहीं होगा।

इस पुस्तक (मानस बोध) के शुरू में ही लिखा है—सुनो, समझो और करो। तीन बातें हैं—सुनो, समझो, करो। श्रवण, मनन, निदिध्यासन। पहले गुरु के द्वारा सुनो, फिर उसको मनन करो—मन में एडजस्टिंग करो। अब क्रिया में आ गए—यह निदिध्यासन हो गया। निदिध्यासन के पंद्रह अंग हैं, जो हम तुम्हें बता चुके हैं।

यम, नियम, त्याग, मौन, देश, काल, आसन, मूलबंध, देह की समता, नेत्रों की स्थिति,

प्राणायाम, प्रत्याहार, धारण, ध्यान और समाधि। इन्हें करना है। यही योग कहा गया है। यह दवा का कोर्स जहां पूरा हुआ कि मुक्त हो गए सदा के लिए भवरोग से। स्वस्थ हो गए - अपने (स्व) में स्थित हो गए।

फिर मस्ती काटो -

‘छाओ छाओ हो फकीर गगन कुटिया।’

अपने स्वरूप में स्थिर हो जाओ। उसी को देखो। दुनिया को मत देखो। दुनिया तो पीछे-पीछे घूमती है, इसकी ओर पीठ करके तो देखो। और अगर इसके पीछे दौड़ोगे तो नहीं मिलेगा कुछ -

‘दिए पीठ पीछे फिरै, सन्मुख होत पराय।’

इसलिए खूब याद करलो कि -

‘सद्गुरु वैद बचन विस्वासा। संजम यह न विषय कै आसा॥

रघुपति भगति सजीवन मूरी। अनूपान श्रद्धा मति पूरी॥’

इतना करना है, यह औषधि है भव-रोग को भगाने की।

दो.- निसिचर अधम मलाकर, ताहि दीन्ह निज धाम।

गिरिजा ते नर मंद मति, जे न भजहिं श्रीराम॥

तो अच्छे बुरे सब ईश्वर से पैदा होते हैं, ईश्वर में ही लीन हो जाते हैं। भगवान पहले इन्हें पैदा करते हैं। क्रोध पैदा करेंगे-क्रोध से क्षमा लाने के लिए। लोभ पैदा करेंगे-धन को वर्जित करके संतोष लाने के लिए। अशान्ति पैदा कर देंगे-शान्ति के लिए। अगर अशान्ति का अनुभव न हुआ हो तुम्हें, तो शान्ति का आभास कैसे होगा? बिना अशान्ति के शान्ति हो नहीं सकती। अशान्ति एक तरह से शान्ति का हेतु है-आधार है। इसलिए ये दुर्गुण इनडाइरेक्ट (अप्रत्यक्ष रूप से) साधन हैं। डाइरेक्ट (प्रत्यक्ष रूप से) साधन हैं सद्गुण। इस इमेंसिपेशन को समझने के लिए बुद्धि लगाना पड़ता है। यह सबकी समझ में नहीं आती। इसलिए सीधे कह देते हैं कि भगवान कृपा करके इन्हें भी अपनी गति दे देते हैं। तो फिर भजन करने की जरूरत ही क्या है? खूब बेइमानी करें गति तो अपने आप मिल ही जाएगी। ऐसा मतलब नहीं है इसमें। बताने वाले लोग बिना सोचे समझे बताने लगते हैं।

तो बुरा देखने मात्र को बुरा है, है वह अच्छा। बुरा ही अच्छे को पैदा करता है। अच्छे से बुरा पैदा होता है। अब इस अच्छे-बुरे के सर्कुलेशन से निकलने में ही कल्याण है। इसका तरीका है कि पहले बुराई का त्याग किया जाय। अब रही अच्छाई। तो इस अच्छाई का भी त्याग कर देना है। जब दोनों का त्याग हो जायगा, तब परमात्मा मिलेगा। वह परमात्मा प्रकृति के सर्कुलेशन से बाहर है। राम ने पहले राक्षसों को समाप्त किया-बन्दरों को साथ लिए रहे। और जब सब खत्म हो गए राक्षस, तो बन्दरों को भी बिदा कर दिया। तो यह रामायण की विधि है। इस विधि

को पहले सुनो, श्रवण करो। फिर समझो, खूब मनन करो-मन अयन बन जाय इन बातों का। यह तरीका मन में घर कर ले। अच्छी तरह से समझ कर मन में बैठा लिया जाय, और फिर उसपर चला जाय। निदिध्यासन किया जाय-सांगोपांग साधना की जाय। सुनने भर से कल्याण नहीं होता। सुनना या श्रवण तो कल्याण के मार्ग का पहला चरण है। अभी तो लंबी मंजिल पड़ी है। इसलिए सुनते ही न रहो-आगे का रास्ता देखो और लक्ष्य तक पहुँचो।

‘निसिचर अधम मलाकर, ताहि दीन्ह निज धाम।’

भगवान ने कुंभकर्ण जैसे अधम राक्षस को भी अपने धाम में पहुँचा दिया। तो भगवान एक ऐसी जगह है जहां से अच्छाई-बुराई दोनों पैदा होती हैं। और उसी में समाहित होती हैं। वहाँ न अच्छाई-अच्छाई रहती है, न बुराई-बुराई रह जाती है। अच्छाई-बुराई से रहित अवस्था है वह। तो यह अध्यात्म क्षेत्र की बातें हैं। लौकिक कायदे कानून, अलौकिक क्षेत्र में लागू करोगे तो सही अर्थ नहीं निकाल पाओगे। जहाँ की बात है, वहीं अर्थ लिया जाय। यह मानस है-राम चरित मानस। मानस में ही मिलेगा सही अर्थ।

इत कपि भालु काल सम बीरा। उत रजनीचर अति रनधीरा ॥

लरहिं सुभट निज निज जय हेतू। बरनि न जायसमर खगकेतू॥

दो.- मेघनाद मायामय, रथ चढ़ि गयउ अकास।

गर्जेउ अट्टहास करि, भइ कपि कटकहिं त्रास॥

ज्ञान के द्वारा साधक ने क्रोध का शमन कर लिया। अब फिर से काम रूपी मेघनाद आया। अन्दर काम वासना के आते ही हालत खराब हो जाती है। रथ सहित आकाश में चला गया। अपने आधार सहित अन्तःकरण में-हृदयाकाश में प्रवेश कर गया। अदृश्य रहता है और बंदरों की हालत खराब कर देता है। काम के आवेश में ज्ञान,विवेक,वैराग्य कुछ भी नहीं रह जाते। राम,लक्ष्मण,अंगद,हनुमान, सुग्रीव सबको मेघनाद ने मार-मार कर बेदम कर दिया। कामदेव की मार साधक के लिए सबसे बड़ी मार है। इसलिए महात्माओं ने इसका नाम ही रख दिया-मार। कामदेव का एक नाम है-मार। अगर इस मार से बच गए,तो फिर बच गए। नहीं बचे तो गए काम से।

मारुतसुत अंगद नल नीला। कीन्हेसि विकल सकल बलसीला॥

पुनि लछिमन सुग्रीव विभीषन। सरन्ह मारि कीन्हेसि जर्जर तन॥

पुनि रघुपति सैं जूझैं लागा। सर छंडइ होइ लागहिं नागा।

ब्याल पास बस भए खरारी। स्वबस अनंत एक अविकारी।।

एक तरह से साधक के अन्दर जितने सजातीय गुण धर्म हैं, सब पर काम हावी हो गया। तो मन के ऊपर विषय का आवेश जब होता है, तो फिर जो भी संकल्प स्वरूप वाणी आएगी, उसमें-उस वाणी रूपी वाण में-विषय रूपी विष भर रहेगा। विषयरूप विष वाले संकल्प हैं- इसलिए इन्हें सर्प कहा गया। अब विषय युक्त संकल्पों का जाल बुन रहा है-काम से आवेशित मन। अब वहाँ ज्ञान, विवेक, वैराग्य ये सब कहाँ रहेंगे? सब उस नागपाश में बंध गए। केवल एक जामवंत रह गया। जामवंत है जानकारी। जानकारी अलग ही खड़ी रहती है। जब काम का प्रभाव सबके ऊपर हो गया-विवेक, वैराग्य कोई कुछ काम नहीं करते, तब भी उसके अन्दर जानकारी बनी रहती है। ईश्वर के संबंध में जो बातें बुद्धि में जमी हुई हैं पहले से, वह जानकारी जामवंत है। जब मन में उसका प्रेसर आया, तो विषय उन्मुखता छूटी। इस तरह से जामवंत ने मेघनाद को हटाया वहां से।

जानकारी जामवंत है। यह हर मौके पर काम कर जाती है। यहां भी काम किया इसने। मेघनाद को बेहोश कर दिया और फेक दिया लंका के अन्दर। तो जैसे ही जामवंत ने मेघनाद को हटाया वहां से-थोड़ा मौका मिला। और नारद का काम आ गया।

इहां देव ऋषि गरुड़ पठायो। राम समीप सपदि सो आयो।।

दो.- खगपति सब धरि खाए,माया नाग बरूथ।

माया विगत भए सब,हरषे वानर जूथ।।

गरुड को भेज दिया नारद ने। नारद कहते हैं आकाश को। साधक की नाभि में-इस नभ में वाणी मिली, अर्न्तजगत से ईश्वरीय संकेत हो गया। उपाय हो गया। गरुड़ आ गया। गरुड़ कहते हैं जीते हुए मन को। गरुड़ कोई चिड़िया नहीं है। जानकारी होने से, इष्ट की अनुकूलता से, साधक को अन्दर ही अन्दर संकेत मिल जाता है,तो मन जो विषय से भर गया था,वह उस काम वासना से मुक्त होकर ईश्वरीय भावना से युक्त हुआ। मन सर्प से गरुड बन गया। जो विषय के संकल्पों का जाल बुन रहा था बन्द हो गया-ईश्वरीय संकल्प वाला मन हो गया। यह गरुड़ जब बन गया, तो विषय के संकल्प शान्त हो गए। विषय के संकल्परूपी सर्पों को खा गया गरुड़। मन की ऐसी यह प्रक्रिया है,जो बाहर घटना के रूप में दिखाई गई है। क्षण क्षण में मन बदलता रहता है। विषय में जाता है,तो सर्प कहा जाता है-ईश्वरीय भावनाओं में बहता है तो गरुड़ कहा जाता है,हंस कह दिया जाता है-

पहले यह मन सर्प था, करता जीवन घात।

अब तो मन हंसा भया, मोती चुन चुन खात।।

तो अब समाज के लोगों में राम का नागपाश में बंध जाना एक बड़ा प्रश्न बन जाता है। भगवान जो बंधन से परे है, असीम है, गुणातीत है, प्रकृतिपार है, वह बंधन में कैसे आ गया? मेघनाद ने नागपाश में डाल दिया-यह कैसे संभव है? गरुड़ को इसी प्रश्न ने परेशान कर दिया था। इसमें समझने की बात यह है कि भगवान कोई आदमी नहीं है-न कोई पदार्थ है। वह तो आकाशवत निर्लेप है। आकार रहित है। ऐसा जो तत्व है, सबके अन्दर आत्मा के रूप में है। 'आत्मा नाम की शरीर के अन्दर कोई अलौकिक चीज है। वह परमात्मा ही माया से आच्छादित होकर जीवात्मा कहा जाता है। वह बोल रहा है अन्दर से।

वह परमात्मा, जीवात्मा रूप से सबके अन्दर माया के वशीभूत होते हुए भी, तत्त्वतः निर्लेप है। वह बंधते हुए भी बंधता नहीं, चलते हुए चलता नहीं, बोलते हुए बोलता नहीं। ऐसा जो भगवान है, वह - कैसे नागपाश में बंध गया और गरुड़ के छुड़ाने से छूटा। जो खुद अपने को नहीं छुड़ा पाया तो दूसरे को क्या छुड़ाएगा? तो यह सब भगवान कुछ नहीं करता-न बंधता है न बांधता है, न छूटता है न छुड़ाता है। वह तो ज्यों का त्यों है स्तंभवतः। उसकी माया का सब खेल है। मनुष्य का मन एक विचित्र उपकरण है। शास्त्र कहता है-

'मन एव मनुष्याणां कारणं बंध मोक्षयोः।

बंधाय विषयासक्तं, मुक्त्यैर्निर्विषयस्मृतम्।।'

यह मन जब माया उन्मुख होता है तो बांधने वाला बन जाता है। विषयोन्मुख होकर नागपाश बनजाता है। यही मन निर्विषय होकर ईश्वरोन्मुख होता है तो गरुड़ बन कर बंधन काट देता है-मोक्ष दिला देता है। तो यह सब साधनात्मक बातें हैं। हायर लेवल की बातें हैं। बुद्धि लगाकर समझना पड़ेगा। मानस में अवगाहन करना पड़ेगा।

इहां विभीषण मंत्र विचार। सुनहु नाथ बल अतुल उदार।।

मेघनाद मख करइ अपावन। खल मायावी देव सतावन।।

जौ प्रभु सिद्ध होइ सो पाइहि। नाथ वेगि पुनि जीति न जाइहि।।

सुनि रघुपति अतिसय सुख माना। बोले अंगदादि कपि नाना।।

लछिमन संग जाहु सब भाई। करहु विधंस जग्य कर जाई।।

जामवंत ने मेघनाद को मूर्छित करके लंका में फेंका। जब उसको होश हुआ तो रावण को वहां देखकर उसे लाज लगी। क्योंकि खूब डींग हांक रहा था कि- 'देखेहु कालि मोरि मनुसाई।' और खुद ही हार खा गया। तो जाकर एक पहाड़ की गुफा में निकुंभला देवी की आराधना करने लगा। अपावन यज्ञ करने लगा। निकुंभला देवी का मतलब स्त्री की इंद्रिय (योनि) से है। यह कामरूपी मेघनाद की इष्ट देवी है। कामावेशित पुरुष को वही अभीष्ट होता है। उसी का यजन-भजन होने लगा। लेकिन यह अपावन यज्ञ यदि पूरा हुआ - अगर स्त्री संसर्ग हो गया एक बार - तो फिर कामदेव को कोई जीत नहीं सकता। फिर साधक सदा के लिए पतित हो जाता है। कामवासना को जीत नहीं पाएगा। इसलिए यह अपावन यज्ञ हो न पाए अर्थात् साधक को संभलना चाहिए। तो भगवान संभालते हैं, तभी संभल सकता है।

‘जे राखे रघुबीर, ते उबरे तेहि काल महुं।’

तो विभीषण ने बताया राम से, कि ऐसा होने वाला है। यह विभीषण कैसे जान गया वहां की बात? विचार करने की बात है। इसलिए यह यहां-वहां की बात नहीं है। यह साधक के अन्दर क्रिया चल रही है। साधक के अन्तर्जगत में ऐसे तो काम का प्रभाव मन में नहीं रहा -नागपाश कट चुका। लेकिन अभी यह काम रूपी मेघनाद मरा नहीं है। वह चुपचाप गुफा में निकुंभला की पूजा कर रहा है। मतलब काम विषयक आसक्ति गहराई में छिपकर बैठी है। चित्त के अन्तराल में अस्पष्ट रूप से कामदेव अपना काम कर रहा है। साधक को भरोसा हो जाता है कि मैंने काम वासना को मन से निकालने में सफलता प्राप्त कर ली है। लेकिन वह गहराई में छिपा है-मौका पाकर पटक देगा। जैसे नारद को पटक दिया था। लेकिन भगवान रक्षा करते हैं,तो बचत हो जाती है। भगवान हमारे अन्दर बैठे हैं, जीवात्मा के रूप में। अन्तःकरण की गतिविधियों के द्रष्टा हैं। साधक को समय-समय पर आत्मा से संकेत मिलते हैं। अच्छे साधक उन संकेतों को पकड़ लेते हैं। और सुधार करते चलते हैं। जीवात्मा है विभीषण,वह सब जानता है। वही बताता है। जब अन्दर से आत्मिक संकेत मिल गया, तो साधक सचेष्ट होकर लग गया। विवेक-लक्ष्मण, सुरति-सुग्रीव, अनुराग-अंगद सबकी मदद ले लिया। और अब कामरूपी मेघनाद को सदा-सदा के लिए समाप्त कर दिया जाएगा। साधना करने वाले साधक को ऐसे ढंग से अर्थ लेना चाहिए। क्योंकि बाहर की दुनिया से उसका लेना-देना रहता नहीं। वह तो अन्तर्मुखी हो चुका है। बाहरसे आंख मूंद लिया है, इसलिए अन्दर देखना है। यही सही अर्थ है। अन्यथा गोस्वामी जी इसका नाम 'रामचरित मानस' क्यों रखते ? ईश्वर के भजन में जिसका मन लगा है,उसका मन है मानस।

जौ तेहि आजु बधे बिनु आवौ। तौ रघुपति सेवक न कहावौ॥

जौ सत शंकर करहिं सहाई। तदपि हतउ रघुवीर दोहाई॥

रघुपति चरन नाइ सिर, चलेउ तुरंत अनंत।

अंगद, नील, मयंद, नल, संग सुभट हनुमंत॥

विभीषण की बात सुनकर राम ने लक्ष्मण को प्रमुख-प्रमुख बंदरों के साथ भेजा - मेघनाद का यज्ञ विध्वंस करने के लिए और लक्ष्मण को उसे मारने के लिए कह दिया। तो जाते समय लक्ष्मण शपथ करते हैं कि आज मेघनाद को मार डालूंगा। चाहे शंकर जी भी उसकी सहायता करें, तो भी बच नहीं पाएगा। तो साधक अगर दृढ़ता ले आए मन में, और विवेक से काम ले, तो ये जितने विकार हैं- काम, क्रोध आदि वे सब नष्टप्राय हो जाते हैं।

अब यहां लोग तर्क रख देते हैं, कि आखिर शंकर को क्यों बीच में ले लेते हैं? उस बेचारे ने क्या अपराध किया है? असल में यह विषय ही ऐसा है। यह बुराई भी शरीर से पैदा हुई है, भलाई भी इसी शरीर से पैदा हुई है। और शरीरों का अधिपति शंकर है। इसलिए उसकी साख दी जाती है। शंकर एक ऐसा देवता है कि कोई भी तपस्या करे ? ऋषि - मुनि, राक्षस, और कुछ भी मांगे-वह दे देता है। भलाई मांगे, बुराई मांगे, धन मांगे, यश मांगे, भोग मांगे, त्याग मांगे, ऐश्वर्य मांगे, सब दे देता है। दूसरा ब्रह्मा दे देता है। लेकिन मांगने वाले विष्णु से सम्पर्क कम करते हैं। शंकर से या ब्रह्मा से मांगते हैं। इस तरह से शंकर का नाम लिया लक्ष्मण ने। कि इस शरीर का- जिसमें यह संघर्ष की क्रिया चल रही है, उसका अधिष्ठाता शंकर भी सहायता करे तो भी मैं उसे छोड़ूंगा नहीं।

शंकर जी सहायता तो राम की भी कर रहा है। रामेश्वरम् में स्थापना किया शंकर की, विधि-विधान से पूजन किया। प्रार्थना किया कि हे मेरे इष्टदेव, हे भगवान, हे मेरे ईश्वर, हे गुरु महाराज ! मुझे विजय दिलाइए। इसी के लिए तो स्थापना किया था। शंकर राम का इष्टदेव है, और रावण का भी इष्टदेव शंकर है। यह शरीर एक ऐसा माध्यम है, कि बुरे-भले दोनों तरह के मामले इसी में आते हैं। इसलिए इसी की शपथ ली जायगी। इसी का आधिपत्य है यहां शरीर में।

अब अंगद वगैरह को लेकर गए। वहां देखा कि मेघनाद पूरी तन्मयता से निकुंभला की उपासना में लगा है। सब टूट पड़े उस पर। यज्ञ विध्वंश हो गया-जानकारी जो गहरे में चल रही थी काम-विषय की अन्दर, वह न रह गई। यह जानकारी रूपी यज्ञ विध्वंश हो गया। बस फिर थोड़ी देर हाथ पैर मारकर ठंडा पड़

गया। काम रूपी मेघनाद का अन्त हो गया - साधक के अन्तर्जगत से। किसी एक साधक में हुआ, संसार भर से नहीं हुआ उसका अंत। वह तो जो साधना में मेहनत करे, और अन्दर से भगवान सहारा देता जाय उसे सफलता मिलती है।

निसा सिरानि भयउ भिनसारा। लगे भालु कपि चारिहुं द्वारा॥

सुभट बोलाइ दसानन बोला। रन सन्मुख जाकर मन डोला॥

सो अबहीं बरु जाउ पराई। संजुग विमुख भए न भलाई॥

निज भुज बल मै बयरु बढावा। देहउं उतरु जो रिपु चढ़ि आवा॥

लंका के चार द्वार हैं- इस शरीर के अन्दर-मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार। इन्हीं से संसार का सब कार्य-व्यापार होता है। संकल्प करते हैं, चिंतवन करते हैं, विचार करते हैं-निश्चय करते हैं, दृढ़ता लाते हैं। चारों द्वारों पर बंदर ही बंदर बैठ गए-इसका मतलब है कि साधक ध्यान में भगवान ही भगवान को देख रहा है। मन में, बुद्धि में, चित्त में, अहंकार में, ब्रह्मज्ञान का ही आवेश छा गया है। जब इस तरह से अन्तःकरण में ईश्वरीय भाव छा जाते हैं, तो फिर ये विरोधी जो राक्षस हैं- ये मरते चले जाते हैं। एक एक करके सब मर जाएंगे। और अगर भजन में, ध्यान में जोर न लगाएंगे, खाकर खूब सोया करेंगे, तो कैसे काम चलेगा? यहाँ सत्संग में भी बैठेंगे और ऊंगते रहेंगे, तो कैसे काम चलेगा? साधकों को यह बंदरों वाला तरीका पकड़ना चाहिए-कि सबेरे-सबेरे से ही-जहां जागे प्रातःकाल-अन्तःकरण में भगवान ही भगवान छा जाय। तो फिर अब मन में, बुद्धि में, चित्त में, अहंकार में-चारों द्वारों में बैठ गए बंदर। अब कहां से निकलेंगे राक्षस। जिधर से आएंगे मारे जाएंगे।

इसलिए जो भजन करने वाले हैं, वे इन कथाओं में अपने साधन के सूत्र खोजते चलते हैं। और उन्हें क्रिया में ले लेते हैं। तो अगर नित्य नियम से भजन को बढ़ाते जाएंगे, तो ये राक्षस सब छीजते जाएंगे, ये जो मन में भरे हैं विकार - ये सब नहीं रह जाएंगे। कितनी बड़ी सेना थी रावण की? सब समाप्त होती जा रही है। रावण के कई लड़के, भाई, भतीजे, धीरे-धीरे सब मरते चले जा रहे हैं। बहुत बड़ा कुटुम्ब है इनका। अनेक लड़का, नाती, संताने इनकी पैदा हो जाती हैं। अब जैसे खरदूषण का एक लड़का था वह मकराक्ष। उसने कहा-मेरी माता ने आदेश दिया है कि जा बेटा, राम की खोपड़ी ले आ, तो उसमें मैं तिलांजलि दूंगी खरदूषण को। तब मैं चूड़ी फोड़ूंगी हांथ की। तब मैं विधवा कहलाऊंगी। अभी वह वैसी ही बैठी है। उस मकराक्ष ने कहा 'राम आज युद्ध करे मुझसे, मैं खोपड़ी लेकर जाऊंगा।' तो जब राम ने सुना तो बोले, कौन है भाई, जो हमारी खोपड़ी लेने आया है? तो फिर राम से युद्ध हुआ।

दो तीन धक्के सहन किया, फिर गिर गया मकराक्ष। तो इस तरह से अनेकों राक्षस मन के अन्दर भरे हैं, इन्हें निकालना पड़ता है।

तो अब रावण लड़ने आएगा। रावण है मोह का रूप। मै, मेरा-यह मोह है। इसे अज्ञान कहो या और कोई नाम रख लो-है यह विजातीय समूह का राजा। जब तक यह नहीं मरेगा-रामराज्य हो नहीं सकता। मोह को जीत लेना आसान काम नहीं है।

अति विचित्र वाहिनी विराजी। वीर वसंत सेन जनु साजी॥

चलत कटक दिग सिंधुर डगही। छुभित पयोधि कुधर डगमगहीं॥

उठी रेनु रवि गयउ छपाई। मरुत थकित बसुधा अकुलाई॥

रावण सेना लेकर चला तो धरती डगमगाने लगी, समुद्र क्षुब्ध हो उठा, वायु रूक गई-ऐसी हालत हो गई। तो सेना क्या, यह तो रावण के चलने पर ही धरती हिलने लगती है। लिखा है-

‘चलत दशानन डोलत धरनी।

जिमि गज मत्त चढ़े लघु तरनी॥’

मोह का संचार जब होता है अन्तःकरण में, तो यह शरीर को भी हिला देता है। शरीर में पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु सभी अंग हैं- शरीर के अंग प्रत्यंग में, प्रत्येक अवयव में इसका प्रभाव दिखाई पड़ता है। ऐसा इसका अर्थ समझ लेना चाहिए। ऐसा नहीं होता कि किसी के चलने से धरती हिलने लगे। लोग सही आध्यात्मिक तरीके से अर्थ लेते नहीं, तो ये बातें आश्चर्यजनक और अटपटी लगती हैं। साहित्य वाले अलंकार की शैली मान लेंगे, तो यथार्थ बात पीछे छूट जाती है। गोस्वामी जी केवल विद्वान कवि ही नहीं थे, अनुभव शील संत थे। इसलिए उनकी कविता साधारण नहीं है। असाधारण है। उसे समझना चाहिए। आदमी के अन्दर जब काम, क्रोध या मोह का प्रबल आवेग आता है, तो इसका असर शरीर पर भी दिखाई देता है। अब जैसे लक्ष्मण को क्रोध आया था, जनकपुर में। तो वहाँ लिखा गोस्वामी जी ने कि-

‘माखे लखन कुटिल भई भौहैं। रद पुट फरकत नयन रिसौहैं॥

क्रोध के कारण आखें लाल हो गईं, भौंहे टेढ़ी हो गईं, होंठ फड़कने लगे। तो आ गया अन्दर के भाव का प्रभाव शरीर के अंगों में। तो मुख्य भाव के साथ ही साथ ये सब अनुभाव भी आते हैं। अन्दर अगर शान्ति का भाव है, तो उसका असर बाहर शरीर पर भी दिखाई पड़ेगा। जैसा भाव मन में होता है, शरीर पर वैसा असर आता है। इस तरह से इसमें यही समझना चाहिए कि अन्तःकरण में जब मोह की प्रबलता

होती है, तो बाहर शरीर स्तर के सारे क्रिया कलापों तक उसका प्रभाव दिखाई पड़ता है। और शरीर ही धरती है।

धड़ धरती का एकै लेखा।

जो बाहर सो भीतर देखा।।

इसलिए शरीर न कहकर, धरती कह दिया -बात वही है।

दो.- दुहुं दिसि जय जयकार करि, निज निज जोरी जानि।

भिरे वीर इत रामहि, उत रावनहिं बखानि।।

रावण रथी विरथ रघुबीरा। देखि विभीषण भयउ अधीरा।।

यह प्रक्रिया अबाध रूप से चलती है साधक के अन्दर, यह युद्ध चलता रहता है। यह तो कवि का चातुर्य है कि इसको कथा के रूप में, नाटक के रूप में, बाहर प्रदर्शित कर देते हैं। यह युद्ध तो निरंतर हो रहा है। हर आदमी के अन्तःकरण में यही हो रहा है। यह तो वही अच्छाई और बुराई की लड़ाई है, जो निरंतर प्राकृतिक रूप से चलती चली आ रही है। सबके हृदय में मोह है, सबके अन्दर क्रोध है, सबके अन्दर काम है, सबके मन में आसक्ति है। सबके अन्दर अलौकिकता है। सबके अन्दर परमात्मा (जीवात्मा) है। अच्छाइयां भी हैं बुराइयां भी हैं सबके अंदर। इनमें संघर्ष की प्रक्रिया अबाध रूप से चल रही है सभी के अन्दर। अब वे कोई-कोई होते हैं, जिनके अन्दर इनको बाध करने की क्षमता होती है। नहीं हम नहीं चलने देंगे इसको-हम परमात्मा को पैदा करेंगे। दसो इंद्रियों के ऊपर कब्जा करके यह जो मोह रूपी दशानन, इस शरीर के अन्दर अध्यक्ष बनकर बैठ गया है। दसो इंद्रियों से विषयानन्द में लगा है हर आदमी। अमूमन सबके अन्दर ऐसा ही है। लेकिन कोई कोई बहादुर है, जिनके अन्दर यह प्रवृत्ति जाग्रत होती है, कि हम इस अध्यक्ष को हटा देंगे और दशरथ को अपना अध्यक्ष बनाएंगे। हम अपने इस शरीर को दशानन की राजधानी नहीं बनने देंगे, दशरथ की राजधानी बनाएंगे। दसो इंद्रियों को अर्थ में लगा देंगे। अब इन हाथों को विषय के लिए स्पर्श करने नहीं जाने देंगे, बल्कि भगवान की सेवा में लगाएंगे। यह वाणी भगवान का नाम ले। यह मन भगवान में लगे, विषय में न जाय। गो-गोचर में माया को न देखे। सीयराम मय देखे सबको। कुछ साहसी लोग ऐसा प्रतिवाद करके खड़े हो जाते हैं। और प्रकृति के विरुद्ध झगड़ा रोप देते हैं। ऐसे बहादुरों की कहानी है यह। यह उनका कानून है, उनका डाकूमेंट है यह रामायण।

इसलिए हिम्मत बांधकर जो परमात्मा को पाने के लिए तत्पर होते हैं, उनकी बातें हैं इसमें, उनकी गाइड-लाइन (दिशा-निर्देश) है यह रामायण। यह ऐसे सामान्य

श्रोताओं-वक्ताओं की चीज नहीं है। यह तो निष्ठावान साधकों के लिए है। संत-सद्गुरुओं द्वारा कहने-बताने की चीज है यह। और अब हर आदमी कह रहा है, सुन रहा है-करने वाली बात से दूर हैं सब। ऐसे कहने-सुनने से क्या लाभ ?

अच्छा, तो अब राम और रावण का आमना-सामना हो रहा है। रावण रथ पर है और राम बिना रथ के है। रथ कहते हैं आस्था, निष्ठा या आधार को। मोह का आधार बना चला आ रहा है सबके अन्दर पहले से। असत्य संसार को लिए चल रहे हैं। यह रावण का रथ है। सत्यनिष्ठा राम का रथ। किसी साधक के अन्दर सांगोपाग रूप लेता है, यह सत्य सिद्धान्त। इसी की तो लड़ाई है, कि गलत सिद्धान्त न रह जाय-सही सिद्धान्त मिल जाय। संसार हटे-भगवान मिले। असत्य संसार-निष्ठा रूप रथ पर मोहरूप रावण बैठता है। तो यह संसार तो दिखाई पड़ता है। यह रावण का रथ और सत्य परमात्म-निष्ठा रूप रथ राम का अप्रकट है। निरवयव देखने में नहीं आता, इसलिए रावण रथी विरथ रघुवीरा। जीवात्मा-विभीषण इस बात को देखता-जानता है। तो साधक को उसकी तरफ से अनुभूतियां मिलती हैं। कम्युनिकेशन होता है, वार्तालाप होता है, और अन्दर ही अन्दर समाधान मिल जाता है। यह सब प्रसंग साधना की उच्च अवस्था में साधक के अन्तःकरण में आते हैं। लेकिन जिनका मन बहिर्मुख होने से बाहरी बातों में रस लेता है, उन लोगों को, सूक्ष्म आंतरिक गतिविधियां समझ में नहीं आती हैं। अब विचार करो, कि रथ में बैठा हुआ आदमी क्या लड़ाई लड़ सकता है ? उसको चारों तरफ से घेरकर कोई भाला घोंप दे, तो भी गिर जाएगा। धनुष बाण का युद्ध भला हिलते-डुलते रथ में कैसे सम्भव है ? जबकि निशाना साधने वाले को बिल्कुल अचल-स्थिर होना पड़ता है। रथ में भी क्या कभी युद्ध हो सकता है ? लेकिन शास्त्रों में देखो तो बिना रथ के युद्ध होता ही नहीं। तो रथ कहते हैं आस्था को आधार को। उसी को उसी आधार को लेकर - अपने उस सिद्धान्त पर आरुढ़ रहकर-यह साधना रूपी संग्राम लड़ा जाता है। वहाँ गोस्वामी जी ने लिखा है कि सत्य का आधार रूप रथ कैसा होता है - जो इस लड़ाई में विजय दिलाने वाला है

-

सुनहु सखा कह कृपानिधाना। जेहि जय होइ सो स्यंदन आना॥

सौरज धीरज तेहि रथ चाका। सत्य सील दृढ़ ध्वजा पताका॥

बल विवेक दम परहित घोरे। क्षमा कृपा समता रजु जोरे॥

ईस भजन सारथी सुजाना। विरति चर्म संतोष कृपाना॥

दान परसु बुधि शक्ति प्रचंडा। बर विज्ञान कठिन कोदंडा॥

अमल अचल मन त्रोन समाना। शम जम नियम सिलीमुख नाना॥

कवच अभेद विप्र गुरु पूजा। एहि सम विजय उपाय न दूजा॥

सखा धरम मय अस रथ जाके। जीतन कहं न कतहुं रिपु ताके॥

दो.- महा अजय संसार रिपु, जीति सकइ सो वीर।

जाके अस रथ होइ दृढ़, सुनहु सखा मतिधीर॥

तो ये सब सद्गुण समूह मिलकर ऐसा अजेय रथ बनता है। इसी रथ से मोहमय संसार को जीता जा सकता है। जिस साधक के अन्दर ये सब सजातीय गुणधर्म आ जाते हैं, मन अचल-अमल हो जाता है, विज्ञानमयी बुद्धि हो जाती है, वह माना जायगा कि सत्य-सिद्धांत पर आरुढ़ है। फिर वह विजय पा सकता है। तो बिना त्याग, वैराग, अनुराग और शम, दम, नियम और भजन-ध्यान किए बिना कुछ होता नहीं। इच्छा का त्याग करना पड़ता है। वही बहादुर लक्ष्य तक पहुंचता है। 'जीत सकै सो बीर।' और एक ऐसा है कि न तो उसके पास सत्य है, न सही सिद्धांत है, इच्छाओं के आधीन है। दिन-रात बेईमानी करता है। रावण जैसे चोरी करता है-स्त्री चुराता है। दसों इंद्रियों से भोग करता है। दिन-रात मेरा है, मेरा है, इसी का रोना रोता रहता है। तो उसकी पूरी इनर्जी इसमें वेस्ट (बर्बाद) हो जाती है। वह संसार-उन्मुख है। संसार में आस्था है उसकी माया में आस्था है। असत्य सिद्धांत में आरुढ़ है। राम सत्य सिद्धांत पर आरुढ़ है। इन्हीं दो में से एक का आधार लेकर आदमी को चलना पड़ता है - चाहे तो रावण की राह पर चले, चाहे राम का रास्ता पकड़ ले।

तो जब विभीषण ने राम से यह क्वेश्चन (प्रश्न) किया, कि न तो आपके पदत्राण (जूते) हैं पैरो में, न आपके पास रथ है। आप इस महाबली रावण को कैसे जीत पाएंगे ? इसके पास तो सब व्यवस्था है-आप कैसे जीत पाएंगे ? तो राम ने कहा, उसके पास कुछ नहीं है। यह सब बनावटी और दिखावटी है। यह ऐय्याश है, चोर है, बेईमान है। मेरे पास सत्य है, शील है, ज्ञान है, विवेक है, वैराग्य है, शम है, दम है। हे सखा! जिसके पास ये सब साधन हो' - ऐसा सत्य सिद्धान्त वाला रथ हो, उसकी विजय ही विजय है। और जो दिखावटी साज-बाज बनाए हो, और अन्दर खराबी घुसी है-बुराइयों से भरा हो, वह नहीं जीत सकता। इसलिए यह सत्य और असत्य की लड़ाई है- अपने ही मानस के अंदर की। अब गोस्वामी जी ने तो पूरी बात खोलकर रख दी है-यह तो पढ़ने वालों का दोष माना जायगा कि सही चीज को ग्राह्य नहीं बना पाते।

रावण शब्द रोने से बना है। संसार के पदार्थों के लिए रोते रहना-डिमांड (मांग) करते रहना, यह प्रवृत्ति ही रावण का रूप है, आदमी के अन्दर। और जो सबमें अनुगत है, देश काल की सीमाओं से पार, सबसे परे, मेरा-तेरा से परे एक रस स्वरूप में स्थायित्व चाहता है। वह राम है। तो अब स्पष्ट हो गया कि यह सिद्धान्तों का झगड़ा है। ये दो तरह की आस्थाएं हैं। एक ही शरीर के अन्दर ये दो तरह के सिद्धान्त या विचार बन जाते हैं। एक दूसरे के अपोजिट (विरुद्ध) हैं। इसलिए यह संघर्ष स्वाभाविक होता रहता है। यह राम-रावण का युद्ध चलता है। इसी को लेकर हमारे ऋषियों-मुनियों ने महात्माओं ने शास्त्र-पुराण, गीता, रामायण बना दिया है। और इन सबके मूल में बात एक वही है। इसलिए अगर तुमको करना है, हमको करना है या किसी को भी करना है-जिसकी कल्याण के मार्ग में चलने की प्रवृत्ति है-उसको यही धारणा दृढ़ करनी पड़ेगी। और इन सब कथा-प्रसंगों की अपने में एडजस्टिंग करनी पड़ेगी। प्रैक्टिकल-साधना करनी पड़ेगी। श्रवण मनन और निदिध्यासन। इसे खूब पढ़ो, खूब सुनो। फिर अन्दर मन के पास पहुँचो। वहाँ सही तरीके से एडजस्टिंग हो जाय-मनन हो जाय। मन अयन स मनन-सब बातें मन में घर कर जाय, स्थायित्व पा जाय। और फिर निदिध्यासन-क्रिया में ले लिया जाय। भजन में लग जाय तो परिणाम मिल जायगा। आनन्द आ जायगा, संतोष आ जायगा, शान्ति मिल जायगी। और अगर बाहरी दृश्यों में ही रमना है, वर्तमान में भी अतीत को ही जीना है, तो फिर यह मन तुम्हें उधर ही ले डूबेगा। तो आदमी का मन ऐसे काम करता है। बारीक होने से मन को तो देख पाते नहीं, रथ और घोड़ा दिखाई देते हैं। इसलिए यह कैसे तालमेल बैठे ? यह कैसी बात है-रावण रथी विरथ रघुबीरा। तो यह ऐसी बात है, कि यह सब चरित्र मानस के हैं, इसलिए बाहर से अर्थ लेने पर तालमेल नहीं बैठ पाता। अगर सही तालमेल बैठाना है, तो इसे मानस में लेना पड़ेगा-अपने अन्दर लेना पड़ेगा।

सुर ब्रह्मादि सिद्ध मुनि नाना। देखत रन नभ चढ़े विमाना॥

हमहुं उमा रहे तेहि संग। देखत राम चरित रन रंगा॥

अब देखो, यह देव लोक अलग बताया गया है, ब्रह्मलोक अलग, शिव लोक अलग है। शंकर जी पता नहीं कैलाश में रहते हैं कि अपने शिव लोक में रहते हैं। और यह युद्ध कहाँ होता है ? इस शरीर के अन्दर। तो इस शरीर में -

‘पद पालाल सीस अज धामा। अपर लोक अंग अंग विश्रामा॥’

सब यहीं हैं जितने लोक हैं देवी देवताओं के। इसी में क्रिया होती है। यहीं सब है- ब्रह्मा, विष्णु, शंकर, देवता, राक्षस। बाहर कहीं इनके लोक नहीं बने हैं। अगर बाहर कोई मान लेगा तो चक्कर में पड़ जायगा। अर्थ नहीं पाएगा। भूल भटक जायगा। हमेशा के लिए विपरीत दिशा में चला जायगा। इसलिए जब हमारा पूरा परिश्रम और लक्ष्य ईश्वर को जानने का है, और ईश्वर जहाँ रहता है वहाँ निशाना है ही नहीं। उधर जा नहीं रहे, तो फिर किधर चले जा रहे हैं ? ईश्वर यहाँ हृदय में बैठा है और हमें चले जाना है वहाँ बद्रीनारायण, तो वहाँ कहाँ मिल जाएगा भगवान। इसलिए इस बात को खूब अच्छी तरह से समझने की जरूरत है कि हमारी गति-दिशा अपनी ओर है, बाहर की ओर कदापि नहीं है। इसलिए शंकर भी यहीं हैं। शंकर, स्थूल शरीर अनुगत चेतन का प्रतिबिम्ब है। ब्रह्मा भी यहीं है, वह सूक्ष्म शरीर में चेतन का प्रतिबिम्ब है। विष्णु भी यहीं है, वह कारण शरीर में है। और तीनों शरीर एक में हैं। और फिर त्रिगुणमयीमाया का यह शरीर बना है। और इसी में परमात्मा सर्वत्र है। तो इस तरह से इन शब्दों से अर्थ लगाओ। यही शब्द तुम्हें सही रास्ता पकड़ा देंगे, परमात्मा से मिलने का।

‘शब्दै मारा गिर पड़ा, शब्द छुड़ाया रार।

शब्द विवेक विकेकिया, शब्दै उतरे पार।।’

तो शब्द का विवेचन करना-विवेक लाना-यह बड़ा कठिन काम है। शब्द की पकड़ होना चाहिए साधक में। शब्द को अगर न पकड़ा गया, तो चूक गए। शब्द ही ब्रह्म है। यह वाणी अजर-अमर है-यह आकाश है। आकाश का नाश कभी होता नहीं। ईश्वर तो अविनाशी है, एकरस है। दोनों एक जैसे हैं। एक जात हैं। तो उसी से यह शब्द ओम् हुआ। ‘ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म। ओम् शब्द ब्रह्म है। वाणी है। यह अजर-अमर होती है वाणी। नाभि से उठकर संकल्प का रूप लेती है। इसी में सजातीय संकल्प देवता कहलाते हैं, विजातीय राक्षस कहलाते हैं। साधक के अन्दर इन दो परस्पर विरोधी संकल्पों का संघर्ष चला करता है। यह स्वाभाविक सनातन प्रक्रिया है। बाहर बताने में-कथानकों में-भिन्न-भिन्न कालों में, भिन्न-भिन्न शरीरों में इनके नाम रूप बदल जाते हैं। और भिन्न-भिन्न प्रकार से इनके युद्धों का वर्णन किया जाता है। इसलिए रामायण का युद्ध हो चाहे महाभारत का या और किन्हीं पुराणों का युद्ध हो-इन सबके मूल में वही एक कानून काम करेगा। उस मूल बात को लेना चाहिए। और जब सही समझ आ जायगी तो लाभ मिलने लगेगा।

लाभ क्यों नहीं होता ? तमाम लोग पढ़ते हैं, सुनते-सुनाते हैं, पूजा-पाठ सब करते हैं, लेकिन सार्थकता नहीं आती। क्योंकि वे इस सही सिद्धांत को नहीं मानते। वे तो मनमाना रवैया अपनाए हुए हैं। रामायण पढ़ेंगे-उसमें बड़ी श्रद्धा रखेंगे, लेकिन रामायण की बातों को मानेंगे नहीं। गीता पढ़ेंगे, भागवत सुनेंगे, लेकिन इनमें लिखी-बतायी बातों पर चलेंगे नहीं। जो बातें अपने करने की हैं, उन्हें पकड़ेंगे नहीं। ऊपर की बातों में रस लेते रहेंगे। जिन गोस्वामी जी को, व्यास को, सांडिल्य को अपना बाप-पुरखा मानते हैं, जिन गुरुदेव को भगवान मानते हैं, उनकी बातों को नहीं मानते। आचरण दूसरे ढंग से करते हैं। तो फिर क्या लाभ मिला यह सब पढ़ने-सुनने का ?

उठ प्रबल पुनि मुरुख जागी। छांडिसि ब्रह्म दीन्ह जो सांगी॥

छंद - सो ब्रह्म दत्त प्रचण्ड शक्ति अनंत उर लागी सही।

पर्यो वीर विकल उठाव दसमुख अतुल बल महिमा रही॥

ब्रह्माण्ड भुवन विराज जाके एक सिर जिमि रज कनी।

तेहि चह उठावन मूढ़ रावन जान नहिं त्रिभुवन धनी॥

दो.- देखि पवन सुत धायउ, बोलत बचन कठोर।

आवत कपिहिं हन्यो तेहि, मुष्टि प्रहार प्रघोर॥

जानु ठेकि कपि भूमि न गिरा। उठ संभारि बहुत रिस भरा॥

मुठिका एक ताहि कपि मारा। परेउ सैल जनु वज्र प्रहारा॥

रामदल और रावण दल में भयंकर युद्ध हुआ। जब रावण की बाण वर्षा हुई बन्दरों पर, तो उधर हाहाकार मच गया। तब लक्ष्मण ने मोर्चा संभाला। सामने आकर ललकारा रावण को। तो रावण ने कहा- 'खोजत रहेउं तोहिं सुतघाती। आज निपाति जुड़ावहुं छाती॥' रावण और लक्ष्मण का घमासान युद्ध हुआ। लक्ष्मण के प्रहार से रावण मूर्छित होकर गिर गया। जब होश में आया तो उसने लक्ष्मण पर शक्ति का प्रहार करके उसे मूर्छित कर दिया। अब हनुमान भिड़ गए रावण से। रावण ने एक घूंसा मारा हनुमान को। लेकिन हनुमान गिरते-गिरते संभल गए। फिर हनुमान ने रावण को घूंसा मारकर मूर्छित कर दिया। ऐसे यह उठ-पटक चलती है। तो यह अन्तर्जगत में संकल्पों की लड़ाई है। बाहर की लड़ाई ऐसे नहीं होती, कि दुश्मन को एक घूंसा मारकर या बेहोश करके छोड़ दिया जाय, और उसे प्रहार करने का मौका दिया जाय।

अगर यह बाहर शरीरों का युद्ध होता, तो जब लक्ष्मण ने रावण को बेहोश कर दिया था, और रावण जमीन पर गिर गया था, तो क्या लक्ष्मण वहां उसे होश में आने को परखे खड़े रहते? मार ही क्यों न देते? क्या इसलिए छोड़ रखा था कि रावण से मार खाने का शौक था लक्ष्मण को? या कि रावण दया का पात्र था? लक्ष्मण तो रावण को मारने ही आए थे, उसका काल बनकर आए थे। क्या कहा था, जब रावण के सामने आए थे? कि,

“रे सठ का मारसि कपि भालू। मोहि विलोकु तोर मैं कालू।।”

तो फिर क्यों नहीं मार दिया? ऐसा अच्छा मौका क्यों गंवा दिया? अब देखो, रावण ने भी यही किया। जब मार दिया शक्ति और लक्ष्मण मूर्छित हो गए तो मार देता। मार देना चाहिए। अभी तो कह रहा था मारने को- ‘आज निपाति जुड़ावहुं छाती।’ लेकिन नहीं मारा। एक प्रहार के बाद फिर दूसरा प्रहार ही नहीं करता कोई। बाहर तो लड़ाई में ऐसा होता नहीं। वहाँ तो एक गोली में नहीं मरा तो, दूसरी-तीसरी गोली दागी जाती है। तो यह कैसा युद्ध है?

ऐसे ही जब हनुमान आया तो एक घूँसा मारा रावण ने, हनुमान लड़खड़ा गया, तो फिर दूसरा घूँसा नहीं मारा रावण ने। अब हनुमान ने रावण को एक घूँसा मारा वज्र के समान, तो वह गिर गया- बेहोश हो गया। अब तो इन्हें मार कूट डालना चाहिए था रावण को। दुश्मन था। तो अगर शरीर स्तर का बाहरी युद्ध होता तो टूट पड़ते सब बन्दर और मारकर ढेर कर देते वहीं। लेकिन रामायण में कहीं भी देखो कि एक प्रहार जो कर दे, वह फिर दूसरा कर नहीं सकता। घूँसा एक बार मार दे, तो दूसरा घूँसा नहीं मारेगा। चाहे वह (प्रतिपक्षी) बेहोश होकर जागे या न जागे। चाहे मर जाय चाहे न मरे। इस तरह से विचार किया जाना चाहिए कि क्यों ऐसा है? वास्तव में यह संकल्पों की लड़ाई है। बाहर की लड़ाई से पूरा-पूरा मेल नहीं बैठता। जब संकल्प ही नहीं आ रहा, तो लड़ेगा किससे। दुबारा प्रहार किस पर करे? विवेक रूपी लक्ष्मण है, वह मोह-रावण की प्रबलता से सुप्त हो गया। अब वहां मन के अन्दर जब मोह ही मोह छा गया, विवेक रह ही नहीं गया, तो मोह लड़ेगा किससे? दोबारा मारे किसे। फिर जब वैराग्य का संकल्प उठा अर्थात् हनुमान आया, तो फिर से मोह रूप रावण ने प्रहार किया। लेकिन वैराग्य की प्रबलता से मोह के संकल्प शान्त हो गए- यह हनुमान के द्वारा रावण को मूर्छित कर दिया गया। अब जब मोह का संकल्प दब गया, मोह रह न गया, तो वैराग्यभाव लड़ेगा किससे? दुबारा प्रहार किस पर करेगा? इसलिए यह मानस का संघर्ष है, अन्तर्जगत की लड़ाई

है। यह बाहर स्थूल शरीरधारी योद्धाओं का युद्ध नहीं है, यह सूक्ष्म संकल्पों की उठा-पटक है। ऐसी यह साधक के मानस की गतिविधि है। यह उसी भाग्यशाली को क्लियर होती है, जो अपने मन के धरातल पर देखने के अभ्यास में लगा हुआ है। जो किसी संत-सद्गुरु की सेवा में रहकर साधना रत होता है। ऐसे यह सबको समझ में नहीं आती।

दो.- उहां दसानन जागिकर, करै लाग कछु जज्ञ।

राम विरोध विजय चह, सठ हठ बस अति अज्ञ॥

इहाँ विभीषण सब सुधि पाई। सपदि जाइ रघुपतिहिं सुनाई॥

नाथ करइ रावन एक जागा। सिद्ध भए नहिं मरइ अभागा॥

रावण जब युद्ध में लक्ष्मण से परास्त हो गया और मूर्छित होकर गिर गया, तो सारथी दूसरा रथ लेकर आया, और उसे लादकर ले गया। रात भर बेहोश पड़ा रहा, फिर जब होश हुआ तो जाकर एकांत में यज्ञ करने लगा। तो यह तो एक कहानी मात्र है - एक राम की एक रावण की। लेकिन वास्तव में यह घटना है क्या यह जानना चाहिए। मैं-मेरा का प्रतीक है रावण। आदमी के अन्दर संसारोन्मुख जो प्रवृत्ति है, इनका प्रतीक रावण है। मेरा-मेरा की प्रवृत्ति जिसके अन्दर है, समझ लो कि उसमें अनुगत चेतन का प्रतिबिम्ब रावण का है। ऐसा यह जो मोह का या अज्ञान का स्वरूप बनता है, वह वाणी, विचार, इंद्रियाँ शरीर-क्षेत्र, आत्मा की मदद, सबके सहयोग से तैयार होता है। और राम ज्ञान का रूप है। तो जब जीवात्मा विभीषण की मदद राम को मिलने लगती है - तो यह सब भी उधर से हटकर इधर ज्ञान के पक्ष में सहयोग करने लगते हैं। तब हमारे अन्दर संसार गलने लगता है। परमात्मा स्पष्ट होने लगता है। लक्ष्य क्या है, जो सुप्रीम तत्त्व आत्मा है इस शरीर के अन्दर उस अपने स्वरूप में फिक्स (संयुक्त) रहें। जो कालातीत है, देशातीत है, गुणातीत है, प्रकृति से परे है-ऐसा उसका स्वरूप है। उसमें अपनी एडजस्टिंग रखें। उसी में रहें। संसार से अनासक्त रहें-यह हमारा कर्तव्य है। संसार असत्य है। यह संसार अपने से ही रच लिया गया है।

यह आत्मा शरीर धारण करती है। तो शरीर का पता लगा, कि यह मेरा शरीर है। यह मैं हूँ। यह गांठ लग गई- 'जड़ चेतनहिं ग्रंथि परि गई।' फिर शरीर के संबंध बन गए, संसार हो गया। फिर शरीर की जरूरतें आ गईं। यह चाहिए, वह चाहिए। सदा के लिए इच्छाओं में फंस गया। तो इस तरह से, जीवात्मा उपाधि हो गई।

इस जीवात्मा का रूप विभीषण है। उसे सब ज्ञान है। उसीमें सब दारोमदार है,लेकिन आसक्ति रूपी लंका में फंसा पड़ा है-परवश हो गया। तो भी वह राम को नहीं छोड़े है। यह जीवात्मा एक ऐसा तत्व है,जो राम और रावण दोनों के बीच ही बीच रहता है। विद्या और अविद्या दोनों में रहता है। जीव को आसक्ति में बांधने वाले काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर, आशा, तृष्णा, विषय-वासना ऐसे ये बहुत से तत्व हैं। यह अविद्या का परिवार है,जिसे हम विजातीय समूह या दुर्गुण समूह कह सकते हैं। बाहरी रूप में इन्हें राक्षस या दानवों की समाज कह दिया जाता है। और इनसे हटाकर अपने स्वरूप में ले जाने वाले कुछ तत्व हैं-जिनको हम ज्ञान, विवेक, वैराग्य, शान्ति, संतोष, क्षमा, दया आदि सद्गुण कहते हैं।इन दोनों में एक का काम है उधर संसार-क्षेत्र में खींचना,और दूसरे का काम है इधर ईश्वर की तरफ लाना। यह प्रक्रिया बनी हुई है। इसी का नाम है माया। यह अलौकिक बन गई है,किसी को समझ में नहीं आती। माया का मतलब कुछ नहीं। वह है ही नहीं। फिर भी परमात्मा को छ लेती है।

“मायाछन्न न देखिए, जैसे निर्गुण ब्रह्म।”

वह है भी नहीं, दिखाई भी नहीं पड़ती, फिर भी सब कुछ है। और सर्वत्र वही-वही दिखाई देती है-

“गो गोचर जहं लगे मन जाई। सो सब माया जानेहु भाई।।”

तो यह जो जीव का माया के साथ मामला फंस गया है,यह जो उलझन बन गई है,यह सुलझती नहीं है जल्दी-

“छूट न अधिक अधिक अरुझाई।”

तो इसी उलझन से निकलने का तरीका है यह मानस। विजातीय जोर लगा देते हैं तो ईश्वर से जीव बना देते हैं। सजातीय जोर मार देते हैं तो इन राक्षसों को मारकर जीव को मुक्त बना देते हैं- ब्रह्म बना देते हैं। तो ऐसा जो फारमूला है,उसी का अंतिम चरण है राम-रावण का युद्ध। यह छठवीं भूमिका है साधना की। पदार्थ अभावनी कहते हैं इसे। जब पदार्थों का अभाव हो जाय। जब पदार्थमय संसार, ईश्वरमय दिखाई पड़ने लगे। ' सीयराम मय सब जग जानी '- ऐसी दृष्टि हो जाय तब यह भूमिका सिद्ध होती है तब यह संसार तिरोभूत हो जाता है, परमात्मा आविर्मूत हो जाता है। अब माया देखने वाली दृष्टि बन्द हो गई,अन्दर की दृष्टि-अनुभूतमयी दिव्यदृष्टि-खुल गई।

“उघरहिं विमल विलोचन ही के । मिटहिं दोष दुख भव रजनी के।।”

तो यह किसकी बंदौलत हुआ ? ज्ञान - ध्यान की बंदौलत। भजन साधना की सही प्रक्रिया को जानने से,और उस पर चलने से, ऐसी दिव्यदृष्टि मिली कि इस बर्फ रूप संसार में हम परमात्मा रूप पानी को देख लेते हैं। परमात्मा का मतलब, जो सबसे सुप्रीम है आत्मा। अपना आत्मस्वरूप। जैसे दर्पण में अपना मुख दिखाई पड़ता है-ऐसे ही सर्वत्र सबमें वही दिखाई पड़ता है जो हम हैं। वही परमात्मा है। उस हमारे अपने के अलावा कुछ न रह जाय-इसको कहते हैं दर्शन। 'सोहमस्मिइतिवृत्ति अखंडा।' दूसरा कुछ है ही नहीं। 'नेह नानास्तिकिंचन।' बस एक आत्म तत्व सर्वत्र हो जाय-अन्य सब कुछ का अभाव हो जाय-उसे कहते हैं पदार्थ अभावनी, यह भूमिका जब सिद्ध हो जाय। यह अवस्था असंसक्ति के बाद आती है। संसार से आसक्ति जो लगी है, जब वह निर्मूल हो जाय। पदार्थों में जो हमारा लगाव बन गया है, वह न रह जाय। तो इसके लिए उपाय यही है कि इन स्थूल नश्वर पदार्थों के ठीक अपोजित जो निर्लेप, अविनाशी, आत्मतत्व है- उसमें हमारी दृढ़ता हो जाय। जब उसमें दृढ़ता हो जायगी, वह ध्येय बन जायगा, मन से हम ध्याता हो जाएंगे और ध्यान में आकाशवत् हो जाएंगे। इस तरह से जब ध्याता, ध्येय और ध्यान, तीनों एक हो जाएंगे-तब जो पारदर्शी है आत्मा, वह हमारी सुरति को अपना लेगा,अपना रंग चढ़ा देगा। फिर सुरति में परमात्मा व्यापक रूप ले लेता है। इसको कहते हैं दिव्य-दृष्टि। यह आना चाहिए। साधना वह मानी जायगी।

तो छठवीं भूमिका है यह लंकाकाण्ड। यहाँ आकर ये सब जो माया के पायक जितने हैं-हटा दिए जाते हैं। ये जो राम के पायक हैं-ज्ञान, विवेक, वैराग्य, यम नियम, त्याग-उन राक्षसों को धीरे-धीरे हटाते जाते हैं। सजातीय पक्ष सबल होकर संसार की ओर से साधक की आसक्ति हटाते जाते हैं। उधर से घृणा कराते रहते हैं, ये वैराग्य - विवेक कि यह असत्य है, इसमें कुछ नहीं रखा है, निस्सार है यह संसार। इसमें कुछ नहीं है,यह जबरदस्ती हमको फंसाए हुए है। यह दुखद है, त्याज्य है-यह सब दर्शाते-दर्शाते, और आत्मा की सत्यता दिखाते-दिखाते,अब यहां इस उच्चतर अवस्था में पहुँचा दिया। यह हमारी साधना है, जो कि हमने धीरे-धीरे विजातीय समूह को विनष्ट कर दिया। सजातीयों को सहारा देते गए। करते-करते यह स्थिति बन गई, कि अब केवल रावण रह गया-मोह रह गया हमारे अन्दर, और वह भी निर्जीव सा है। तो भी वह मानता नहीं। वह अब भी अपना झण्डा ऊँचा करना चाहता है। अन्दर से तो टूट चुका है, लेकिन बाहर ललकार रहा है। जब राम सामने आए तो रावण कहता है- अरे वैरागी! किसी बलवान से कभी लड़े नहीं हो तुम। आज

रावण के पाले पड़े हो-विश्व विजयी रावण के। अगर तुम भाग नहीं गए युद्ध-भूमि से, तो तुम्हें अभी काल के हवाले करता हूँ।’

‘करउं आजु तोहि काल हवाले। परेउ कठिन रावन के पाले।।’

तो यह जो नाटकीय शैली से संवाद लिख दिए गए हैं, यह बाहरी समाज का तरीका लिया गया है। बात सब अन्दर की है। और कवि ने इसको नाटकीय रूप दे दिया है-अन्तःकरण की क्रिया को। साधक अपने अन्तःकरण में जो साधना करता है, उस अदृश्य साधना की गतिविधि को दृश्य के रूप में, नाटकीय शैली में काव्य रचना करके, एक ड्रामा का रूप दे दिया है। एक रील बना दिया है। कविता बद्ध कर दिया है। जब ये प्रसंग पढ़े-सुने जाते हैं, तो वह रील- वह बाहरी दृश्य सामने आ जाते हैं, और हम उसीमें अटक-भटक जाते हैं। अन्दर की असली बात छूट जाती है। इस तरह से यह शैली आदमी को रोचक तो लगती है, लेकिन भ्रमित भी करती है। बाहरी बातों का पुष्टीकरण हो जाता है, साधारण जनता में। लोग प्रायः इसी में अटके रह जाते हैं। और जो विवेकशील लोग हैं, वे इसके सही आशय को पकड़कर आत्मकल्याण का रास्ता अपनाते हैं। तो मूलतः यह सब गुप्त चरित्र हैं। मानस के चरित्र हैं। गोस्वामी जी कहते हैं -

‘राम चरित सर गुप्त सुहावा। संभु प्रसाद तात मै पावा।।’

संत रूप शंकर इसका अनुसंधान करते हैं। संत-सद्गुरु ही इसके रहस्य को खोलते हैं संत ही हंस है, जो दूध का दूध और पानी का पानी कर देता है-

‘संत हंस गुन गहहिं पय, परिहरि वारि विकार।’

और हंस कहते हैं आत्मा को-परमात्मा को - मुनि महेस मन मानस हंसा।’

संत सद्गुरुओं के अन्दर वह परमात्मा क्लियर रहता है। इसलिए उन्हें हंस कहते हैं, परमहंस कहते हैं। तो हमारे-तुम्हारे अन्दर जो आत्मा है, वह सही गलत सब कुछ जानती है। वहां से सम्पर्क बना लिया जाय, तो सब उत्तर अन्दर ही अन्दर मिल जाते हैं। इसलिए सही चीज-जो अपने कल्याण का हेतु बनती है, उसे पकड़ लेना चाहिए। सार-ग्राही होना चाहिए साधक को।

‘साधू ऐसा चाहिए, जैसा सूप सुभाय।

सार-सार को गहि रहै, थोथा देय उड़ाय।’

तो इन बाहर की बातों में-इस ड्रामा में -कोई दम नहीं है। उस युद्ध से मतलब हल नहीं होगा। इस युद्ध को देखना है, जो निरन्तर चल रहा है अपने अन्दर। इस युद्ध में लगना है। भगवान का ध्यान करते हैं-वही हमारा धनुष है। ये राक्षस-काम,

क्रोध, लोभ-ये बाधा डालते हैं। इन्हीं को परावाणी रूपी बाण से सत्संकल्प रूपी सायकों से मारते हैं। त्याग रूप तरकश बांध लो। राम के पास यह धनुष, बाण और तरकश ही तो थे। यह रूप बनाओ। और अगर इसके विपरीत विषयभोगों में ध्यान लगेगा, तो यह रावण का धनुष हो गया। विषयगत संकल्प ये रावण के बाण हो गए। तृष्णा उसका त्रोंण हो गया। तो ऐसा रूप अपने अन्दर मत बनाओ। अपने अन्दर अगर राम की विजय कराना है, तो भजन-ध्यान में डटना पड़ेगा। और अगर गरियार बैल की तरह जुआं डाल दोगे, हार मान लोगे, तो रावण ही जीतेगा। इसलिए जो साधक साहस नहीं खोता, अपने अन्दर सजातीय पक्ष को सहारा देता है, विजातीय पक्ष को हताश- करता है, वह मजबूती पकड़ता जाता है, और राम की जीत उसके अन्दर होती है। और बनावटी-दिखावटी वालों का काम अलग ढंग से चलता है।

जो दिखावटी करते हैं, अपने अन्दर क्षमता नहीं ला पाते वे फेल हो जाते हैं। साधना में बनावट से काम नहीं चलता। सच्चाई चाहिए। क्षमता आना चाहिए। दृढ़ता आना चाहिए। तब सफल होंगे।

प्रात होत प्रभु सुभट पठाए। हनुमनादि अंगद सब धाए।।
रन ते निलज भागि घर आवा। इहां आइ बक ध्यान लगावा।।
अस कहि अंगद मारा लाता। चितव न सठ स्वार्थ मन राता।।

रावण यज्ञ कर रहा था - तो इसका मतलब है कि साधक के अन्दर मोह अप्रकट रूप से अपने प्रभाव को बढ़ाने के लिए प्लानिंग कर रहा था। ये सब बंदर गए वहां देखते ही अंगद ने मारा एक लात रावण को। तो हृदय में जो अनुराग है भगवान के लिए-वह अंगद है। और जो मोह अन्दर जमावट ले रहा था-वह रावण है। तो लात मारने का मतलब अनुराग के द्वारा उस दुर्गुण को एक धक्का लगा। अरे! दुष्ट, तुम कहां यहां अड़्डा जमा रहे हो, यहाँ अनुराग-वैराग्य वाले क्षेत्र में। तुम यहां साधना के रास्ते में कैसे आ गए। हम भगवान की तरफ स्टैंडर्ड रोड से जा रहे हैं, और यह कांटा-कंकड़ कहां से आ गया? तो मोह को ठोकर लगी। मोह कुछ ढीला पड़ा। साधना में यही नीति अपनाई जाती है। अपने अन्दर देखते रहो-मन में क्या बुराई आई। झट उसे सजातीय संकल्पों की ठोकर मारकर हटा दो। लेकिन मोह तो बड़ा प्रबल होता है। वह जहां डेरा डाल देता है, फिर हटाए नहीं हटता। अंगद के लात मारने पर भी रावण टस से मस नहीं हुआ। क्योंकि वह अविद्या क्षेत्र का अध्यक्ष है। वह असत्य को स्थापित करने में लगा है। अपने स्वार्थ में लगा है। जब नहीं हटा तो अब दूसरे उपाय होंगे। ऐसा नहीं कि एक प्रयास हुआ, और फिर थक-हार कर

बैठ गए। अनुराग से, वैराग्य से, ध्यान से, जैसे हटे, इन दोषों को हटाना ही पड़ेगा अन्दर से।

छंद-

नहिं चितव जब करि कोप कपि गहि दसन लातन
मारहीं।

धरि केस नारि निकारि बाहेर तेऽति दीन पुकारहीं॥

तब उठेउ क्रुद्ध कृतान्त सम गहि चरन बानर डारई।

यहि बीच कपिन्ह विधंस कृत मख देखि मन महं
हारई॥

इस तरह से रावण का यज्ञ विध्वंश हो गया। सब योजनाएं बेकार हो गईं। अब उसकी जो आशाएं थीं, क्षमताएं थी, वे सब निराशा में बदल गईं। अब मोह की पकड़ ढीली पड़ गयी। जब साधक के अन्दर अनुराग वैराग्य आदि सब जुटकर लग गए तो वह कमजोर पड़ गया। लेकिन अन्तिम दम तक लड़ता रहेगा रावण। अब वह बंदरों को पकड़कर पटकने लगा, भारी क्रोध करके।

तो साधना करते हुए अनेक तरह की बाधाएं साधक के सामने आती हैं, और उसे डांवाडोल करती हैं। उसके अन्दर जो सजातीय भावनाएं हैं, अच्छे विचार हैं- उन्हें डिगा देते हैं व्याधि, स्त्यान, संशय, प्रमाद, आलस्य, अविरति, भ्रान्तिदर्शन अलब्ध भूमिकत्व और अनवस्थितत्व ये नौ अन्तराय या विघ्न बताए गए हैं शास्त्रों में। यही सब हैं, जो यहाँ बंदरों को पटकनी दे रहा है रावण। यह अविद्या के तरीके हैं- हजारों तरह के लड़ाई के। विद्या के भी तरीके हैं अविद्या को दबाने के लिए। तो अविद्या की पलटन का चीफ कमांडर है मोह अर्थात् रावण और विद्या-पक्ष का चीफ है ज्ञान, अर्थात् राम। इन दोनों का संघर्ष है। जब यह समझ में आ गया तो हिम्मत बांधकर निष्ठावान साधक साधना में जुट पड़ते हैं। और जिनकी समझ काम नहीं करती, हिम्मत काम नहीं करती, निष्ठा सच्ची है नहीं, शंका ही शंका मन में आने लगी, तो फिर अकेले में सोचते हैं- हमें ऐसा कह दिया गया। यहां सेवा बहुत करनी पड़ती है। हमारी ताकत नहीं है- चलें घर भाग चलें, वहीं ठीक रहेगा। क्या करेंगे यहां रहकर? ऐसे मन में कचाहट आती है। ऐसे साधक डटे नहीं रह पाते। अच्छे साधक में ऐसे हीन विचार नहीं आते। उसके विचार पाजिटिव (सकारात्मक) होते हैं। उसके अन्दर सजातीय भावना काम करती है। वह सोचेगा कि यहाँ बीमारी तो बहुत आती है लेकिन कोई आंच तो नहीं आ पाती। कोई मरा तो नहीं बीमार होकर, यहाँ।

बड़े-बड़े आश्रमों में देखो तो हर साल दो चार बाबा मर जाते हैं। और फिर जिसे मरना ही है, वह कहीं चला जायगा तो भी मरेगा। इसलिए समझना चाहिए कि ये बीमारी, ये दिक्कतें-ये भोग हैं। यह तो प्रकृति की ओर से दण्ड है-आएगा चला भी जाएगा। तो यह अध्यात्म विषय ऐसा है कि इसकी पूरी जानकारी होना चाहिए। क्योंकि पूरी जानकारी के बिना डममगा जाता है साधक।

‘जाने बिनु न होइ परतीती।’

बिनु परतीति होय नहिं प्रीति।।’

जानकारी से विश्वास आ जाता है। और विश्वास आने पर तर्कना समाप्त हो जाती है। मन में मजबूती आ जाती है। अनुराग आ जाता है। साधना बन जाती है तो कल्याण हो जाता है। और जो लोग साधना नहीं करते हैं, उन्हें न राम से मतलब है न रावण से मतलब है। उनके यहां ये दोनों निर्जीव हैं, निष्क्रिय हैं। हमारे लिए - साधना करने वालों के लिए ये सजीव हो गए हैं। हमने अपने अन्तःकरण में इन्हें जाग्रत किया है। और दोनों को हमने ही पैदा किया है। हम आत्मा हैं। आत्मा ने मन को मैनेजर बना दिया है। यह मालिक बन बैठा है। इसी ने काम, क्रोध, लोभ, मोह, आदि को पैदा करके बैठा लिया है। इस तरह से हम अपने ही बनाए माया के घेरे में फंस गए हैं। अब हमको ही इसे हटाना है।

देखो, इस पर हम तुम्हें एक दृष्टांत सुनाते हैं। एक था किसान। वह गंगा नहाने गया। उसका एक लड़का था छोटा, चार-पांच साल का, तो उसे भी लेता गया। तो गंगा में पहले उसे नहलाया और रेत में बैठा दिया। किसान इधर नहाने लगा। उधर वह लड़का बालू में खेलता रहा। खेल-खेल में उसने बालू का एक महल बनाया। जब उसका पिता नहाकर आया और लड़के से कहा चलो अब घर चलें। तो उस लड़के ने कहा अभी नहीं चलेंगे। अब मेरा मन इस महल में रम गया है। मैं इसे बनाऊंगा और इसमें रहूंगा। जिद कर बैठा लड़का। तो हारकर पिता भी बैठ गया और उसने एक बड़ा सुन्दर बालू का किला बनाया। तो लड़का नाराज हो गया और उसके घर को बिगाड़ दिया। बाप ने भी उसके घर को बिगाड़ दिया। दोनों चले आए घर।

तो इसमें लड़का है जीव और बाप है ईश्वर। इन दोनों का जोड़ा है ‘द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया’। जीव जैसे ही संसार में आया, वह अपना घरौंदा बना लेता है, और फंस जाता है माया में। उसे छोड़ना नहीं चाहता। और परमात्मा सर्वत्र है। जहाँ जिसका उद्धार करना चाहता है, उसके हृदय में आकर विद्या का किला बनाता है। तो

फिर दोनो में-विद्या और अविद्या में झगड़ा हो गया। तो लड़के वाला अविद्या का किला गिरा दिया गया। फिर लड़के ने विद्या वाला किला गिरा दिया। दोनो मिलकर चले आए घर। जीव और परमात्मा अभिन्न होकर स्वरूपस्थ हो गए। कल्याण हो गया।

यही यहां हो रहा है, इस मानस की कथा में। विभीषण जीव है। जो अविद्या के किले में- लंका में -मोह की आधीनता में था। अब विद्या क्षेत्र में आकर राम की मदद करने लगा है। अब काम, क्रोध आदि विजातीय परिवार से मुक्ति मिलती जा रही है। जहां यह मोह रूपी रावण मरा, तो वह राजा हो जायगा। परमात्म पद पर प्रतिष्ठित हो जाएगा। उसी का यह प्रयास चल रहा है- साधना चल रही है। अविद्या का किला बिगाड़ा जा रहा है। अब इस किले का आखरी खम्भा टूटना है। मोह का अंत हो जाय तो राज्य मिल जाय, स्थिति मिल जाय।

इसलिए जीव का धर्म है कि वह परमात्मा के काम में मदद करे। जैसे विभीषण करता जा रहा है। हर मौके पर विभीषण ही सब उपाय बताता है। तो यह जीवात्मा सब कुछ जानता है उससे कुछ भी छिपा नहीं है। जब साधक को उसका मार्गदर्शन मिलने लगता है, तो वह लक्ष्य की ओर तेजी से बढ़ता चला जाता है।

छंद-

कादर भयंकर रुधिर सरिता चली परम अपावनी।

दोउ कूल दल रथ रेत चक्र अवर्त बहति भयावनी॥

जल जंतु गज पदचर तुरग खर विविध वाहन को गनै।

सर शक्ति तोमर सर्प चाप तरंग चर्म कमठ घने॥

दो.- बीर परहिं जनुतीर तरु, मज्जा बहु बह फेन।

कादर देखि डरहिं तहं, सुभटन्ह के मन चेन॥

तो जब रावन का यज्ञ विध्वंश, कर दिया गया तो वह अब मरने को तैयार होकर राम के सामने आया। 'चलेउ निसाचर क्रुद्ध होइ, त्यागि जीवन की आस।' अब घमासान लड़ाई हुई। इसका बड़ा भयंकर-वीभत्स चित्रण किया है गोस्वामी जी ने। खून की नदी बह चली। भूत, प्रेत, पिशाच मज्जन कर रहे हैं। उस समय कायरों को भय लग रहा है, और जो बहादुर हैं, वे धैर्य के साथ युद्ध कर रहे हैं, ललकार रहे हैं। जो डरपोक हैं उनकी हालत खराब है, खटिया खड़ी है उनकी। ऐसी ही समस्या है हर एक साधक के सामने। जब साधना की प्रक्रिया को आद्योपांत देखा-समझा जाता है-पूरा चित्र सामने आता है, तो इनमें जो साधक साहसी हैं, दृढ़ निश्चयी हैं, जो

अपना जीवन होमने को तैयार होते हैं, उन्हें तो शान्ति रहती है। निश्चित रहकर साधना में लगे रहते हैं। और जो कादर हैं, हिम्मत के कच्चे हैं, वे डर जाते हैं। अरे बाप रे बाप ! बड़ा लंबा कोर्स है। बड़ा कठिन काम है। मोह सहज में न मरेगा। क्रोध सहज में पीछा न छोड़ देगा। काम को काबू में करना सरल नहीं है। बड़ी मेहनत करनी पड़ेगी। जब हम अपने अवगुणों को मारेंगे तो हमें भी कुछ न कुछ चोट पहुँचेगी। ऐसा तो हो नहीं सकता कि हम तो उन्हें मार लें और हमें कोई कष्ट न उठाना पड़े। जितनी चोट उधर वाले को लगती है, उतनी ही मारने वाले की इनर्जी खर्च होती है। इसीलिए तो वह शक्ति रूपी सीता अर्पण कर दी गई है, कि शक्ति चाहे पूरी खर्च हो जाय हमारी, लेकिन ये दुष्ट सब मारे जायं, एण्ड (अंत) हो जाय। हम मुक्त तो हो जायं माया से। यहां सीता का अपहरण, जो दिखाया जाता है, ऐसा यह नहीं है। पंचवटी और लंका सब यहीं इस शरीर में ही हैं। सीता कहीं आती-जाती नहीं हैं। वह तो योग-साधना करके प्राप्त की जाती है-साधक द्वारा अर्जित क्षमता है। यह क्षमता इसी के लिए प्राप्त की जाती है, कि साधना में आगे चलकर काम आती है। इस तरह से साधना में तो पूर्व जन्मों तक की कमाई काम आती है। लेकिन दुनिया का खेया ऐसा है, कि जब कोई किसी के द्वारा मार खा जाता है, तो उस मार खाने वाले से ही पूछते हैं सब, कि कहां चोट लगी, कितना घाव हुआ, कहीं फ्रेक्चर (अंग भंग) तो नहीं हुआ? यह कोई नहीं पूछता कि उस मारने वाले को कितनी चोट पड़ी? उसकी इनर्जी कितनी खर्च हो गई। उसे भी अपनी क्षमता गंवानी पड़ती है। इसलिए जो मारने वाला है, वह पहले से अर्पण कर देता है। समर्पित कर देता है पूरी क्षमता। पहले ही सीता का अपहरण करा दिया जाता है-स्वेच्छा से। कि हम अपनी पूरी ताकत, अपना सब कुछ समर्पित करते हैं। और समर्पण जिसका हो जाता है, वह फिर साधना रूपी इस भयावह युद्ध में अड़ा रह जाता है, खड़ा रह जाता है। वह कभी दगा नहीं देगा, कभी डरेगा नहीं, पीछे हटेगा नहीं, विजय उसी को मिलेगी।

तो यहां जो युद्ध चलता है साधक के अन्दर-मोह का दल रावण का और राम का ज्ञान का दल-इन दोनों में चलता है। एक बार मन में ज्ञान के संकल्प जोर मारते हैं, तो वहीं मन में मोह के विचार भी उठ जाते हैं। तब पहले वाले सजातीय संकल्प दब जाते हैं। यह जो भजन करते हुए भी मैं-मेरा का भाव बना है मन में, यह रावण जल्दी हटाए हटता नहीं। इसी को जड़ से ख़तम करने में लगा है साधक। अपने ज्ञान, विवेक, वैराग्य, अनुराग जितने साधन हैं, सबकी मदद से इस मोह को हटाना है-यही युद्ध है। इसी का नाम साधना है।

तो अब मोह के जो सहयोगी विकार थे अन्दर, साधक ने एक-एक करके उन्हें मार दिया है। क्रोध, काम, लोभ, मद, मत्सर, ईर्ष्या, द्वेष सब मर मिट गए। लेकिन ये सब वस्तुतः मरते नहीं हैं। ये तो सूक्ष्म अवयव हैं। शरीरों की तरह ये नहीं मरते-कटते। न दुर्गुण मरते हैं, न सद्गुण मरते हैं। ये तो केवल कथा-कहानियों में मरते हैं। जब इन्हें बाहर स्थूल रूप में दिखाया जाता है-कुंभकरण के रूप, में मेघनाद के रूप में, तब इनका मरना-कटना भी दिखाया जाता है। घायल हो गए खून की नदी बह चली। न खून है वहां, न कुछ है। बस साधक बैठा है, और उसके अन्दर प्रक्रिया चल रही है। मन के अन्दर अच्छे-बुरे संकल्पों का संघर्ष चल रहा है। इसी शरीर के अन्दर विद्या भी अपना डेरा लगाए है, अविद्या भी अपना डेरा जमाए है। अविद्या की भी संचार प्रक्रिया इसमें चल रही है, और विद्या भी अपना ट्रेनिंग सेंटर खोले हुए है। इनमें अविद्या क्षेत्र में जो योद्धा हैं, जब उनका आवेश आता है-उनकी सच्चाई सामने आती है, तो हमारे मन-बुद्धि, इंद्रियां और इनमें बैठे हुए देवी-देवता सब त्राहि-त्राहि बोलने लगते हैं। और जब विद्या क्षेत्र के अवयव हावी होते हैं, तो उधर हडकंप मच जाता है। यही दो तरह के संकल्पों का-विचारों का आवेग है-अन्दर से आता-जाता रहता है। यह महायुद्ध है-महा संग्राम है। इसमें क्षण-प्रतिक्षण मन के अन्दर जो अच्छाई-बुराई का उदय अस्त होता है, उसे नित्य नैमित्तिक प्रलय कहते हैं। जब विद्या के द्वारा अविद्या को समाप्त कर दिया जाता है, तो इसी को प्रकृति प्रलय कहा जाता है। और जब विद्या और अविद्या दोनों के ऊपर उठ जाता है, तो उसे महाप्रलय कहा जाता है। कोई-कोई होता है जो महाप्रलय कर पाता है। इस तरह से ये सब बातें साधक के अन्दर आती हैं। बाहर कहीं यह सब नहीं होता है।

दो.- रावन हृदय विचारा, भा निसिचर संहार।

मै अकेल कपि भालु बहु, माया करौ अपार॥

देवन्ह प्रभुहिं पयादे देखा। उपजा मन अति छेभ विसेषा॥

सुरपति निज रथ तुरत पठावा। हरष सहित मातलि लै आवा॥

बताइये, अब आखीर में इन्द्र रथ भेज रहा है राम के लिए। जब सारी लड़ाई हो चुकी और अब रावण भी मरने वाला है, तब इन देवताओं की सहानुभूति जागी। ये लोग तो बहुत पहले से युद्ध देख रहे थे-देखत नभ सुर चढ़े विमाना। तो आज कैसे होश आया, पहले नहीं आया। तो ये सब बातें दूसरी हैं। ऐसा कहीं नहीं होता कि जब लड़ाई जीतने वाला है कोई, तब उसे मदद दी जाय। ये सब समझने की बातें हैं।

हां, तो अब रावण माया का विस्तार करेगा। रावण का आखिरी युद्ध है यह। अगले दिन मरना है उसे। तो इस आखिरी लड़ाई को अत्यधिक भयानक रूप से दिखाया गया है। ऐसा ही होता है। साधक साधना करते-करते जब लक्ष्य के समीप पहुँचता है, तब माया की प्रबलता उसके लिए ज्यादा ही बढ़ जाती है। कठिनतम परीक्षाओं से उसे गुजरना पड़ता है। महान दुर्गम घाटियों से गुजरना पड़ता है। लेकिन जो साधक साधना में पारंगत हो चुका है, अपने ध्येय से हट नहीं रहा है, वह सफल अवश्य होता है। उसको अदृश्य शक्तियां सब मदद देने लगती हैं। ऐसी-ऐसी युक्तियां उसे मिल चुकी होती हैं कि माया की हर चालाकी से बच निकलता है। भगवान की मदद भी रहती है अन्दर से सहारा उसका रहता ही है, बिना उसके तो कुछ होता नहीं।

रथारूढ रघुनाथहिं देखी। धाए कपि बलु पाइ विसेषी॥

सही न जाय कपिन कै मारी। तब रावन माया बिस्तारी॥

सो माया रघुबीरहिं बांची। लछिमन कपिन्ह सो मानी सांची॥

देखी कपिन्ह निसाचर अनी। अनुज सहित बहु कौसलधनी॥

रावण ने ऐसी माया रच दी कि जितने राक्षस थे वे सब बंदरों को राम-लक्ष्मण के रूप में दिखाई पड़ने लगे। कभी-कभी ऐसा होता है कि साधक जब भजन में बैठता है, भगवान का ध्यान करता है तो भगवान की जगह राक्षस दिखाई पड़ता है। राक्षस ही ईश्वर का रूप लेकर बैठ जाता है। माया के प्रकोप से कभी ऐसा भी होता है। यह साधक के लिए बहुत बुरी स्थिति है। वेदान्त में इसी को असंभावना, विपरीत भावना आदि अज्ञान की वृत्तियां कहा गया है। अज्ञान का ही कार्य है, यह रावण की कलाबाजी है। सब बन्दर, भालू और यहां तक कि लक्ष्मण को भी यह माया असर कर गई। केवल राम एक ऐसा तत्व है कि उस पर प्रभाव नहीं पड़ा। राम ज्ञान का रूप है। ज्ञान के सामने अज्ञान ठहर नहीं सकता। राम ने एक वाण चलाया, तो सारी माया हट गई। तो ज्ञान रूप से राम ही इस माया को जानता है और वही इसका निवारण करता है। एक वाण मारा- परावाणी रूपी बाण। एक ही शब्द में सारी बुराई निकल गई। साधना में आगे बढ़े हुए साधक को इष्ट की तरफ से ऐसी वाणी मिलती है। उस वाणी रूपी वाण से माया का प्रभाव हट जाता है। समझ काम कर जाती है, कि यह जो हम सही का गलत और गलत का सही मान कर बैठे थे, यह पूर्व के पापों का परिणाम था। इस पाप के कारण हमारे वर्तमान के सद्विचार दब गए थे,

और बुरे विचार हावी हो रहे थे। ऐसा ज्ञान होने से साधक की बुद्धि का परदा जैसा खुल गया।

‘माया हरी हरि निमिष महुं हरषी सकल मर्कट अनी।’

जब इस तरह से वाणी रूपी वाण चला भगवान का तो झट वह माया उड़ गई। बन्दर खुश हुए अर्थात् साधक के अन्तःकरण में जो ब्रह्म विचार चल रहा था पहले से, जो ब्रह्म ज्ञान का स्रोत चल रहा था, वह सही हो गया। यह इतना कहने-बताने में समय लगता है, वहां साधक के अन्दर यह सब होने में देर नहीं लगेगी। क्षण भर में सब हो जाता है वहां।

तो अगर कभी अपने अन्दर ऐसी विपरीतता आ जाय तो उसे जल्द से जल्द नष्ट कर देना चाहिए। विपरीत भावना का मतलब है कि जो बुराई है अपने अन्दर, उसे हम अच्छा मानने लगे, और अच्छाइयों को पसंद न करें। तो यह कंडीशन साधक के लिए बहुत खतरनाक होती है। इसे तुरंत मन से हटा देना चाहिए। अगर यह स्थिति देर तक बनी रह गई या बार-बार आती है तो विनाश कर देगी।

दो.- बहुरि राम सब तन चितइ, बोले बचन गंभीर।

द्वंद जुद्ध देखहु सकल, श्रमित भए अति वीर।।

अस कहि रथ रघुनाथ चलावा। विप्र चरन पंकज सिरु नावा।।

तब लंकेस क्रोध उर छावा। गरजत तरजत सनमुख आवा।।

अब राम और रावण का द्वन्द्व युद्ध होगा। इधर राम और उधर बिल्कुल आतंककारी, बड़ा बलवान, कज्जलगिरि जैसा डरावने रूप वाला रावण गर्जना करते हुए आया सामने। वहां तमाम जो छोटे-बड़े बन्दर थे, उसे देखकर उनकी क्या हालत हुई होगी- यह कल्पना करो। सब साधकों को इस दशा से गुजरना पड़ता है। हर साधक के अन्दर माया-मोह की प्रबलता भयंकर रूप में आती है। साधक को उसका सामना करना पड़ता है। साधक के मन में माया के हुजूम आएंगे-उनसे निपटना पड़ेगा। भगवान का सहारा रहता है, इसलिए सही साधक हिम्मत नहीं हारता। यह शरीर क्षेत्र है, और अन्दर दुर्गुणों का समूह यह स्थिति बना सकता है। साधक को घबराना नहीं चाहिए। क्योंकि उसके पास एक ताकत है बहुत बड़ी। वह परमात्मा की ताकत है। उसके पास आत्मा की ताकत है। वह सत्य है। सत्य की ताकत है। हर हालत में असत्य, असत्य हो जायगा और सत्य रहेगा। सत्य का पक्ष है साधक के साथ। इस असीम ताकतवर तत्व के भरोसे पर, साधक साहस बांधकर सद्गुणों को बटोरकर युद्ध रत हो जाता है। डट जाता है साधना रूपी संग्राम में। फिर आगे ही आगे बढ़ता

है। मैदान छोड़कर भागता नहीं है, क्योंकि रघुवंशी है वह। 'रघु'— यह शब्द संस्कृत की 'लघि' धातु से बनता है जिसका अर्थ है आगे बढ़ जाना, पारगामी होना। वही सच्चा सूर्यवंशी है जो साधना में प्रगति करते हुए लक्ष्य को प्राप्त करे। वही रघुवंशी है। निवृत्ति मार्ग के साधकों की परंपरा—निवृत्ति मार्ग की परम्परा ही सूर्यवंश कही जाती है। और वही तो रघुवंश है। यह बहादुरों की परंपरा है। डटने वालों की परंपरा है, हटने वालों की यह परंपरा नहीं है।

“जिनके लहं हि न रिपुन पीठी। नहिं पावहिं परतिय मनु दीठी॥”

“रघुवंसिन कर सहज सुझाऊ। मन कुपंथ पग धरइ न काऊ॥”

तो जो इन लक्षणों वाले साधक होते हैं, वे साधना में सफल होते हैं, साधना रूपी संग्राम में विजयी होते हैं। इसलिए ध्यान रूपी धनुष और त्याग रूपी तरकश और वाणी रूपी वाण लेकर डटे रहो। अगर ढीले पड़ गए तो फिर यह माया की सेना इतनी प्रबल है, कि इससे पार पाना आसान काम नहीं है।

‘व्यापि रहेउ संसार महुं, माया कटक प्रचंड।

सेनापति कामादि भट, दंभ कपट पाखंड॥’

यह जो माया उन्मुख विचारधारा और ईश्वर उन्मुख विचारधारा — का झगड़ा, हमारे-तुम्हारे सबके अन्दर चलता है, वही है यह राम-रावण का युद्ध। इसमें हमें राम का साथ देना है। जीवात्मा विभीषण है। उसे रावण का साथ छोड़ देना है— माया उन्मुख विचारधारा का त्याग करना है। ईश्वर उन्मुख विचारधारा का पोषण करना है। इसलिए भगवान में मन लग जाय, तब ठीक है।

देखे कपिन्ह अमित दससीसा। जहं तहं भजे भालु अरुकीसा॥

भागो बानर धरहिं न थीरा। त्राहि-त्राहि लछिमन रघुबीरा॥

दहं दिसि धावहिं कोटिन्ह रावन। गर्जहिं घोर कठेर भयावन॥

डरे सकल सुर चले पराई। जय कै आस तजहु अब भाई॥

सब सुर जिते एक दसकंधर। अब बहुभए तकहु गिरि कंदर॥

रहे बिरंचि संभु मुनि ज्ञानी॥ जिन्ह जिन्ह प्रभु महिमा कछु जानी॥

इस तरह से राम और रावण का भीषण युद्ध चलता है। उसमें विभीषण भी राम की तरफ से लड़ा। तो जब जीवात्मा की मदद मिलती है तभी सफलता मिलती है। मोह का अंत कर पाना हंसी-खेल नहीं है। देखते हो अकेला रावण सबके छक्के छुड़ाए है।

मोह है रावण। इसे अपने अन्दर से हटाना है। इसके लिए संघर्ष करना है? पुरुषार्थ करना है।

रावण अनेक छल-छंद करता है। राम उसके सिर-भुजा सब काट देते हैं - फिर नए पैदा हो जाते हैं। अब वहां रावण ही रावण प्रकट हो गए। चारो तरफ करोड़ों रावण दिखाई पड़ने लगे। जिधर देखो उधर रावण। असंख्य रावण हो गए। तो ये जो मन के अन्दर विकार हैं, और आदमी ने विधिपूर्वक व्यवहार में लेकर संजोया है, इनको अपनाया है। पदार्थों को अपनाया है। उनकी कामना की है, वह कामना मन के अन्दर इतनी प्रबल प्रवृत्ति पैदा कर देती है, और वह इन्लार्ज (विस्तृत) होकर ऐसी रूप रेखा बना देती है कि फिर वह हटाए नहीं हटती। अनेक-अनेक तरह से वही सामने आ जाती है। अच्छे-अच्छे साधक इससे घबड़ा जाते हैं। दिमाग में न आए, बुद्धि जिसमें फेल हो जाय, जो मन में न समाए, अनुभूतियों में न आए - ऐसी प्रबल यह माया है 'इदमित्थं कहि जाय न सोई।' यह कैसी है, क्या है, कहते नहीं बनता। इसलिए शास्त्र कहता है- 'महात्भुताऽनिर्वचनीयरूपा।' वह माया अद्भुत है, अनिर्वचनीय है। और इतना इसका इन्लार्जमेंट (विस्तार) हो जाता है कि, दिल दिमाग सबमें छा जाती है। तो फिर इसके प्रबल आवेग में ठहर पाना मुश्किल हो जाता है। सब भालू-बंदर त्राहि-त्राहि बोलने लगे। भगदड़ मच गई देवताओं में भी - अब तो भागो और कंदराओं में घुसकर वहीं लटके रहो चमगादड़ों की तरह-तभी इससे जान बचने वाली है। अब भगवान के दिल में बस गिने-चुने लोग ही रह गए - 'रहे विरंचि संभु मुनि ज्ञानी।' बाकी तो कोई बचा नहीं। क्योंकि उन्हें भरोसा था कि भगवान कोई न कोई उपाय करेंगे ही। इस माया जाल से छुड़ाएंगे। इसलिए उनकी हिम्मत बनी रही। वे डटे रह गए।

अब यहाँ पर देवी-देवता सब परेशान हैं। इस शरीर के अन्दर ये सब इस युद्ध में सहभाग कर रहे हैं किसी न किसी रूप में। ब्रह्मज्ञान मयी वृत्तियों में अनुराग, वैराग्य, क्षमा, दया, संतोष, यम नियम ये सब बंदर लगे हुए हैं। उधर विजातीय तत्व जो राक्षस हैं वे खड़े ही हैं। इस तरीके से यह युद्ध निरंतर आध्यात्मिक पृष्ठ भूमि लिए हुए है। जो साधक साधना की भूमिकाओं या सोपानों को विधिपूर्वक समझता है और साधन प्रक्रियाओं को उसी के अनुसार अदलते-बदलते चलता रहता है सावधानी के साथ, वही इसमें सफल होता है। इसमें यह कोई जरूरी नहीं है कि कोई बहुत पढ़ा लिखा विद्वान हो, तब कामयाब होगा। इसमें तो उसे ही कामयाबी मिलेगी, जो लगन के साथ साधना में लगेगा। यह विद्या अलौकिक है। इस अलौकिक विद्या को हृदय में ले लिया जाय, अपने मानस में टेप कर लिया जाय और साधना से सिद्ध

किया जाय, तब ठीक रहता है। क्योंकि विधिपूर्वक चलने में आगे अनेक परिस्थितियां, अनेक समस्याएं आ सकती हैं। इसलिए इसे विधिपूर्वक सांगोपांग अच्छी प्रकार से समझना चाहिए।

दो. - मुरुछ विगत भालु कपि, तब आए प्रभु पास।

निसिचर सकल रावन्हि, घेरि रहे अति त्रास॥

तेही निसि सीता पहिं जाई। त्रिजटा कहि सब कथा सुनाई॥

सिर भुज बाढ़ि सुनत रिपु केरी। सीता उर भइ त्रास घनेरी॥

रावण को सब बंदर घेर कर मार रहे थे। लेकिन उस अकेले रावण ने अंगद, हनुमान, सुग्रीव, नल, नील, द्विविद सबको बेदम कर दिया। तब जामवंत ने मोहरा संभाला। रावण की छाती में लात मारा तो रावण रथ से जमीन में गिर गया, मूर्छित हो गया। रावण का सारथी उसे जैसे-तैसे उठाकर ले गया। तो यह जामवंत ब्रह्मा का अंश है। हमारी बुद्धि में ब्रह्म विद्या की शुरु से अंत तक की जो जानकारी है, वही जामवंत है। यही जानकारी मौके पर कामदेती है। जब साधक के अंदर अविद्या का आक्रमण बड़े वेग से होता है, और ये अनुराग-वैराग्य, ज्ञान-ध्यान सब फेल हो जाते हैं, तब यह जानकारी काम कर जाती है। यह बुद्धि जामवंत ऐसे संकट के समय काम देता है। देखो, जब मेघनाद ने सबको बांध दिया था नागपाश में, उस समय भी जामवंत ने उसे परामृत किया था। और बूढ़ा इसलिए है कि जानकारी शुरु से चली आ रही है। बहुत पहले से होती चली आ रही है।

उधर सीता बैठी है अशोक वाटिका में। ज्ञान की प्रशक्ति है सीता। और अशोक कहते हैं आत्मीय क्षेत्र को। जहां किसी प्रकार का शोक नहीं है। वहाँ सीता रहती है। सीता उससे अलग नहीं जाती। और उसी क्षेत्र में जब मोह प्रवेश कर जाता है, और जब सीता की स्वयं रुचि हो जाती है कि मैं इस घेरे से बाहर निकलूं, तभी सीता का अपहरण होता है। ऐसा नहीं है कि सीता को कोई यहां से उठाकर वहां ले गया। सीता कोई ऐसी वस्तु नहीं है, वह तो क्षमता है, इनर्जी है, शक्ति है। वही सबमें काम करेगी। इसलिए समझना चाहिए कि यह सब संरचना अपने अन्दर की है। यह मानस की कथा है, बाहर की बात नहीं है। तो सीता कहीं आती जाती नहीं - बस उसका रंग-रूप बदल जाता है। कभी ऐसी हो जाती है, कभी वैसी हो जाती है। कभी ऐसी हो जाती है कि यह चक्कर बाजी में पड़ जाती है। जब हम साधना करते-करते छीजने लगते हैं, तब फिर यह कंडीशन (हालत) हो जाती है। तब दोनों के (ज्ञान और मोह के) बीच में पड़ जाती है। तब फिर रोना-पीटना मच जाता है। तब

यह अशोक वाटिका में आ जाती है। फिर संघर्ष करो और जब साधना की पूर्णता आई तो राम के वामांग में आकर सुशोभित हो जाती है।

जब हमारी संसार में आसक्ति रहती है तो उस अवस्था में सीता अरेस्ट (कैद) रहती है, और इस शरीर का नाम लंका हो जाता है। सीता संसार रूपी समुद्र के बीच में पहुँच जाती है। और सत, रज, तम से आच्छादित हो जाती है - इस त्रिकूट में आ गई। जब इसके अपोजिट गुण धर्म आ गए और इनकी बहुतायत न रह गई, भजन की बहुतायत आ जाती है, तो फिर इसी शरीर का नाम अवध हो जाता है। राम इसमें राजा बनकर बैठ जाते हैं। सीता उनके साथ रहती है। इस तरह से यह सब मामला अपने अंदर का है। जो इसे नहीं समझ पाते - ऐसे ही लोग बाहर निकल पड़े - बाहरी बातों में रुचि लेने लगे और वहीं उलझ कर रह गए। तो बहिर्मुखता में आदमी, रुचि होते हुए भी, ईश्वर का ठौर-ठिकाना नहीं पा सकता। गोस्वामी जी कहते हैं -

‘याही ते मै हरि ज्ञान गंवायो।

परिहरि हृदय कमल रघुनाथहिं, बाहर फिरत मूढ़मन धायो।।’

यही बात कबीर दास कहते हैं -

‘कस्तूरी कुंडलि बसै, मृग दूटै बन माहिं।

ऐसे घट-घट राम है, दुनिया देखै नाहिं।।’

तो भाई, “इदं शरीरं कौन्तेय क्षेत्रमित्यभिधीयते।” इसी शरीर में ही सब कुछ है। वयुष ही ब्रह्माण्ड है। इसी में लंका, अयोध्या, राम, रावण सब हैं। इसी में यह सब राम-लीला और रावण लीला चलती है।

अब सही चीज को लोग समझें या न समझें, लेकिन अज्ञात भाव से हर आदमी की रुचि ईश्वर के लिए बनी हुई है। दुनिया भर के लोग तमाम तरीकों से ईश्वर के प्रति लगाव बनाए हुए हैं। सबके मन में लालासा भरी है भगवान के लिए। सब चाहते हैं कि कोई अच्छे महात्मा मिलें। सब चाहते हैं - कि आत्मिक क्षेत्र की बात करने वाला कोई मिले। हमें शान्ति मिले, यह सब चाहते हैं।

काटत बढ़हिं सीस समुदाई। जिमि प्रति लाभ लोभ अधिकाई।।

मरइ न रिपु श्रम भयउ विसेष। राम विभीषन तन तब देख।।

उमा काल मर जाकी ईछ। सो प्रभु जन कर प्रीति परीछ।।

सुनु सर्वज्ञ चराचर नायक। प्रनत पाल सुर मुनि सुखदायक।

नाभिकुंडं पियूषं बस याकें। नाथं जियत रावणु बल ताकें॥

यह इंटरनल कम्युनिकेशन (आन्तरिक संवाद) हो गया। आत्मा का संवाद हुआ। और युक्ति मिल गई। जीवात्मा है विभीषण। उसको हर चीज की जानकारी है। उसका मार्गदर्शन मिल गया। और जब उसे प्रक्रिया में लिया गया तो रावण मार दिया गया। राम थक गए लड़ते-लड़ते, मार नहीं पाए रावण को। अब जब आत्मिक निर्देश मिल गया, तब मरा। तो यह सब रहस्य मय है। मानस है यह। साधना की प्रक्रिया है इसमें। इसे ठीक से समझना चाहिए। जहां कोई बात क्लियर न हो उसे पूछना चाहिए और क्रिया में लगे रहना चाहिए – साधक का यह धर्म है।

बरुन कुबेर सुरेस समीरा। रन सन्मुख धरि काहु न धीरा॥

भुजबल जितेहु काल जमसाईं। आज परेहु अनाथ की नाई॥

जगत विदित तुम्हारी प्रभुताई। सुत परिजन बल बरनि न जाई॥

राम बिमुख अस हाल तुम्हारा। रहा न कुल कोउ रोवनि हारा॥

अगर काल को जीत लिए होता, तो मरता कैसे? कवि लोग ऐसे ही बड़ाई करते-करते तारीफ का पुल बांध देते हैं। काल को जीत लिया होता, तो यह दशा न होती, न इन रानियों को इस तरह से रोने की नौबत आती। काल को कहां जीता। शरीर स्तर से काल को कोई नहीं जीत सकता। न राम ने जीता, न कृष्ण ने जीता। काल की गति अबाध है। समय है काल। दिन जो बीत गया, वह कभी पकड़ में आएगा क्या? जो निकल गया वह निकल गया। भविष्य पकड़ में आने वाला है नहीं। वह वर्तमान बनकर आता है, और पकड़ते-पकड़ते भूतकाल बनकर हाथ से निकल जाता है। इस तरह से यह काल की गति बड़ी विचित्र होती है। काल बाधित संसार है। इसलिये काल अबाधित होने का तरीका अलग है, अलौकिक तरीका है वह। लौकिक तरीके में काल नहीं जीता जा सकता। उस अलौकिक तरीके से लिया जायगा तो राम अब भी है। कृष्ण अब भी है। रावण अब भी है। इंद्र भी है, नारद भी है। कोई प्रसुप्त है, कोई उदार है। कोई छिपे रूप में है, कोई प्रकट है। तो वह दूसरे क्षेत्र की बातें हैं। जब तक उस अलौकिक क्षेत्र में प्रवेश नहीं पा लिया जाता, तो ये सब चीजें जो हम बताते हैं, पल्ले नहीं पड़ती हैं। उस क्षेत्र में पारंगत होने पर जो दृष्टि खुलती है, उसमें तो सब अविनाशी ही है। पदार्थ भी परमेश्वर ही तो है। बर्फ रूप संसार भी पानी रूप परमात्मा ही तो है। उसके अलावा भी कुछ है क्या? यही तो सत्य सिद्धान्त है, यही दर्शन है – सर्वं खलु इदं ब्रह्म। तो वह बात अलग है।

यहां जो बताया जाता है उसका मतलब यही है कि उस अलौकिक तरीके को पकड़ने की कोशिश की जाय।

दो.- अहह नाथ रघुनाथ सम, कृपासिंधु नहीं आन।

जोगिवृंद दुर्लभ गति, तोहिं दीन्ह भगवान॥

मंदोदरी बचन सुनि काना। सुर मुनि सिद्ध सबन्हि सुख माना॥

आदमी जो बात कहता है, कहते - कहते उसके ठीक विपरीत बात कहने लगता है और समझने में नहीं आता। फिर कहते-कहते अनुकूल हो जाता है, और समझ में नहीं आता। बस, रात-दिन आदमी यही कर रहा है। इसी का नाम संसार है, जो समझ में नहीं आता। मंदोदरी ने पहले तो शुरू किया रावण की बड़ाई कि तुम बड़े बलवान थे, बड़ी प्रभुता वाले थे। भगवान के खिलाफ होने से तुम्हारी यह दुर्गति हुई। तुम ऐसे थे - वैसे थे, तमाम प्रशंसा किया। और फिर कहा, वाह रे भगवान। कितने दायलु हैं श्रीराम, जिन्होंने तुम जैसे महान पापी को भी सद्गति दिया। इसका मतलब दूसरा है। यह मन के अन्दर का सिस्टम (तरीका) ही ऐसा है, जब रावण की तरफ देखते हैं- माया की तरफ - तो उसकी बात सूझती है, और जब भगवान सामने आ जाते हैं, तो उसकी बात सूझती है। वहां माया वाली बातों का मतलब कुछ नहीं रह जाता है। ईश्वर में इतनी क्षमता है, इतना पावर है, कि उन बातों को वह खा जाता है। इसलिए ऐसा होता है। तो जब भगवान का नाम आ गया तो मंदोदरी को रावण की महिमा भुला गई। भगवान की दयालुता बताने लगी। ऐसे दयालु हैं भगवान, कि तुम्हारा भी कल्याण कर दिया। और ऐसा कल्याण, जोकि बड़े-बड़े योगियों को भी दुर्लभ है, वह गति तुम्हें मिल गई। और जब तक भगवान हटारहा दिमाग से। रावण ही रावण भरा रहा मन में, तब तक उसी का गुणगान किया। ऐसी शैली से दोनों तरह की बातें बनती हैं - वहां, मानस के स्तर से। मंदोदरी अन्तर्जगत में बुद्धि को कहते हैं।

जब मंदोदरी ने भगवान की कृपा की बात कही, तो देवता सब खुश हुए। शरीर के अंग-प्रत्यंग में बैठे हुए देवता, बुद्धि रूपी-मंदोदरी की इस बात से खुश हुए। बुद्धि में भगवान की बात आ जाय, तो खुश होने की बात ही है। सजातीय भावनाएं सब उल्लास से भर जाती हैं। यह मतलब है इसका।

दो. - मंदोदरी आदि सब, देइ तिलांजलि ताहि।

भवन गई रघुपति गुन, गन बरनत मन माहिं॥

आइ विभीषण पुनिसिरु नायो। कृपासिंधु तब अनुज बोलायो॥

तुम्ह कपीस अंगद नल नीला।। जामवंत मारुति नय सीला।।

सब मिलि जाहु विभीषण साथ। सारेहु तिलक कहेउ रघुनाथ।।

बुद्धि रूपी मंदोदरी है। यह जो रावण - मैं मेरा, पदार्थों की इच्छा, उनके लिए रोते रहना - यह जो भरा रहा मन के अन्दर, उसे यह बुद्धि अब अंजली भर-भर कर अन्दर से फेंक रही है। मोह का परित्याग, बुद्धि के द्वारा किया गया - मोह को तिलांजलि दे दी गई। पूरी तरह से मोह को त्याग दिया गया। तिलांजलि देना - यह एक मुहावरा या फ्रेज बोला जाता है, जिसका मतलब है - पूर्ण परित्याग कर देना। तीन बार तिलांजलि का नियम है। तो स्थूल शरीर से, सूक्ष्म शरीर से, और कारण शरीर से - तीनों स्तर से मोह को तिलांजलि देकर, राम के गुणगान गाने लगी। ज्ञान से आच्छादित बुद्धि हो गई।

यह मैं का भाव जो आता है आदमी के अन्दर, यही मय दानव है। यही मैं आसक्ति रूपी लंका बना देता है। यही 'मैं' ऐसी बुद्धि रूपी मंदोदरी पैदा कर देता है, और रावण को सौंप देता है। मोह रूपी रावण बुद्धि रूपी मंदोदरी पर कब्जा कर लेता है। बुद्धि पर मोह का आधिपत्य हो जाता है। यह हर आदमी के अन्दर ऐसा होता है। फिर भजन करते-करते जब यह गाड़ी हमारी, पैट बदलकर आसक्ति की पटरी छोड़कर निवृत्ति की लाइन पकड़ लेती है, तो चलते-चलते यहाँ इस स्थिति में पहुंच जाती है, कि अब वही मंदोदरी रूपी बुद्धि, रावण रूप मोह को अलविदा कह देती है। तो यह काम हर साधक को करना है। अब इसको तिलांजलि दे देना है - मोह को पूरी तरह निकाल देना है। इसे कहो, कि लो, यह अपना आखिरी कर्जा भी ले लो, और चले जाओ। हमारी बुद्धि अपना यह फर्ज अदा करे और फिर भगवान के गुणगान में उसे तन्मय हो जाना चाहिए। फिर रावण का नाम नहीं लेना चाहिए इसे। फिर बुद्धि में भगवान ही भगवान छा जायगा और यह पूरी तरह से आत्मोन्मुख होकर रहेगी। विभीषण की होकर रहेगी।

अब क्लियर (स्पष्ट) हो गया होगा कि जब तक मोह रूपी रावण पूरी तरह से मर-मिट नहीं जाता, तब तक यह बुद्धि रूपी मंदोदरी उसी की पत्नी होकर रहती है - यही नियम है। इस शरीर के अन्दर जितने अवयव हैं, सब यही करते है। अगर माया में रुचि हो गई है, तो उसी के लिए रोते रहेंगे। अगर भगवान से प्रेम हो गया, तो उसके लिए रोते रहेंगे। इसलिए भगवान से प्रेम हो जाय और माया-मोह को तिलांजलि दे दी जाय - यह काम किया जाय। तब यह जीवात्मा रूपी विभीषण

राजा बन जाता है परबस से स्वबस हो जाता है। परबस जीव स्वबस भगवंता, जीवत्व से ईश्वरत्व में पहुँच बन जाती है।

अब शासन हो गया विभीषण का। तो जो राजा होगा, उसी की यह मंदोदरी पत्नी बनेगी। जो इस शरीर के अन्दर सबसे सुप्रीम लेबल (सर्वोच्च स्तर) की कमांडिंग टाप (शिखर नायकत्व) करेगा, उसी की स्त्री मंदोदरी रहेगी। इसमें नहीं लिखा है तो क्या हुआ? जो कहा जा रहा है उसे मान लो। इस बुद्धिरूपी मंदोदरी का फिर रूप बदल जाता है। इसलिए शास्त्र की बात से वह रूप पहिचानने में नहीं आता। भगवान के यहां इसे शक्ति का रूप बना दिया जाता है। और सुप्रीम लेबल होने से उसे शक्ति, सीता, लक्ष्मी, परमशक्ति और सबकी कर्ता-घर्त्ता आदि नामों से इसे पुकारने लगते हैं। यह जब रावण इत्यादि के साथ रहती है - मोह आदि के साथ-तब यह मंदोदरी कहलाती है।

अब मुख्य-मुख्य बंदरों को, जामवंत को और लक्ष्मण को भेज रहे हैं - विभीषण के साथ। राम क्यों नहीं जाते? इसलिए कि राम का ही पद तो है यह, जो विभीषण को मिल रहा है। एकत्व की स्थिति में अब वहाँ दो नहीं रहेंगे। इसलिए राम नहीं जाएंगे। एकत्व होने पर वहाँ दोनों का होना बन नहीं सकता। जो राम है, वही तो विभीषण है - आत्मा। तो यह जो राम का - सुप्रीम आत्मा का - सबसे शिरोमणि पद है, उस पर स्थिति ले रहा है जीव रूप विभीषण। अब साधक की साधना का कोर्स पूरा हो चुका है। एण्ड (आखिरी) टाइम (समय) आ गया। जीवात्मा के ऊपर जो मोह रूप आवरण था, वह दोष हट चुका है। अब वह अपने निर्लेप स्वरूप में स्थिति ले रहा है। ऐसा यह प्रसंग है।

तो राम ने इन सबको बुलाकर कहा -जाओ महाराज विभीषण को राजगद्दी पर सुशोभित करो। लक्ष्मण मेरा प्रतिनिधित्व करेगा। क्योंकि मैं पिता की आज्ञा के कारण नगर में नहीं जा सकता। संन्यासी के रूप में रहना पड़ेगा। तो यह कर्तव्य रूपी कैकेयी का कानून साधक पर तभी से लागू हो जाता है, जब से वह साधना में प्रविष्ट होता है। वनवास रूप साधन-पथ पर आरुढ़ होने के साथ ही साधक का यह कर्तव्य हो जाता है कि अनावश्यक संपर्क न करे। किसी में आसक्ति न रखे। स्त्री पर दृष्टि न डाले। स्त्रियों को माता की तरह आदर दे और उन्हें मन ही मन प्रणाम करे। गाँव-गोत्र से संबंध न रखे, न वहाँ जाना ही चाहिए।

तो इसका अर्थ यह आता है कि राम ने ही हमारी साधना के नायक रूप में प्रस्तुत होकर महत्वपूर्ण इस भूमिका को निभाया है। एक आदर्श साधक की भूमिका

को निभाया है। और वही सुप्रीम तत्व है। आज अनेक जन्म के पुण्यों के प्रताप से यह मांगलिक स्थिति आ गई है, कि उसी का अंश यह जीवात्मा, उसी के पद को प्राप्त कर रहा है। राम ने कहा - यह जीवात्मा रूपी विभीषण जो अनादि काल से माया के वशीभूत होने से, अपने स्वरूप को भुला बैठा था - तो अब तुम लोग बहादुरो! मेरी आज्ञा का पालन करो, और इसे मेरे ही स्वरूप में प्रतिष्ठित करो। इसलिए मैं वहां नहीं रहूँगा, यही मेरे रूप में रहेगा। इसे ही मेरे पद पर प्रतिष्ठित होना है। वहां पर राम ने यही तो कहा कि - 'तोर कोश गृह मोर सब' - अब अंतर नहीं रह गया। यह अखण्ड राज्य है, जो मिला विभीषण को। जीवात्मा माया सेमुक्त होकर सनातन आत्म-पद पर प्रतिष्ठित हो जाय' - यही है कि 'जरत विभीषण राखेउ, दीन्हेउ राज अखण्ड।' और वहाँ बाहर कहीं लंका में विभीषण का अखण्ड राज्य नहीं चल रहा है। यह सब दकियानूसी बातें पता नहीं लोगों के दिमाग से क्यों नहीं हटती हैं ?

इस तरह से यह जीवात्मा, परमात्मा का ही रूप हैं। साधक ही साधना का क्षेत्र है, और उसी का आत्मा उसी का अपना राम - अपनी शाखा-प्रशाखा और अंगों का क्रमशः विस्तार करता जाता है। और उसी में राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न आदिसब और अनुराग, वैराग्य आदि तमाम बंदर बनते चले जाते हैं। और साधना की पूर्णता के लिए अपनी-अपनी जगह काम करते हैं। करते-करते आज एक रूप बनकर तैयार हुआ, कि निष्कर्ष आ गया। उस प्रक्रिया का एण्ड (अंत) आ गया। पूर्णरूप से उसकी निवृत्ति हो रही है। जीवत्व से मुक्त होकर शुद्ध आत्मस्वरूप में स्थित हो रहा है। रंक से राजा होने जा रहा है। राजा इंडिपेंडेंट (स्वतंत्र) को कहते हैं, परतंत्र को नहीं कहते। इसलिए राजा कहो, चाहे राम कहो, चाहे ईश्वर कहो, चाहे शासक कहो, चाहे सर्वेश्वर कहो - ये सब टाइटल्स (उपाधियां) उसी मुक्तात्मा को सुशोभित होती हैं, जो आत्मज्ञान की अखण्ड एक रस अनुभूति में लीन होते हैं - राम का वही तो स्वरूप है।

‘ज्ञान अखण्ड एक सीताबर।

माया बस्य जीव सचराचर।।’

‘जो सबके रह ज्ञान एकरस। ईश्वर जीवहिं भेद कहहु कस।।

तो अब इसकी माया से निवृत्ति हो चुकी है, इसलिए मेरे ही रूप में इसे प्रतिष्ठित करो। यह और मैं एक रूप हो चुके हैं। इसलिए मेरा अब वहाँ इसी के रूप में रहना समझो - अलग से वहाँ जाना मेरा बनेगा ही नहीं। इस शैली से यह

प्रसंग आध्यात्मिक रूप रेखा में लिया जाना चाहिए। गोस्वामी जी ने राम के मुख से बड़ी सहजता से और लौकिक मर्यादा के ढंग से कहला दिया है, कि मेरे लिए प्रतिबंध है - मैं नगर में नहीं जा सकता, इसलिए मेरे प्रतिनिधि बनकर लक्ष्मण चले जाएंगे।

राम के कहने का मतलब है कि लक्ष्मण तो मेरे ही अंग है। मेरी तरफ से मैंने इस विवेक रूप लक्ष्मण को प्रकट किया है। यह प्रवृत्ति मेरे अन्दर-साधक के अन्दर - पुण्य रूपी पिता से जाग्रत हुई है। जिसके पास बहुत बड़ी पुण्य की पूंजी होती है, तब अच्छी से अच्छी समझ, और निर्मल विवेक प्राप्त होता है। यदि विवेकप्राप्त न हुआ तो अध्यात्म विद्या के लिए की गई सारी मेहनत बेकार चली गई समझो।

‘विद्या बिन विवेक उपजाए। श्रम फल किए पढ़े अरुपाए।।’

इसलिए लक्ष्मण को मेरा ही प्रतिरूप समझो, और इनके साथ जाकर विभीषण का राजतिलक करो। तो इस तरह से राम की आज्ञा जब हो गई, तो सबने ले जाकर विभीषण का राजतिलक किया और फिर विभीषण सहित राम के पास आए। तो इसका अर्थ यह हुआ कि वही राम है आत्मा, जोकि जीवात्मा-विभीषण के रूप में पददलित था - माया के आधीन होकर। और दुर्गुणों के बीच सांसत में पड़ा था। और वही सबको इनर्जी देता था। यह आत्मा ही शक्ति का पुंज है। वहीं से दुर्गुण-सद्गुण या दानव-देवता सबको शक्ति मिलती है। वही मूल स्रोत है। रावण ने जब विभीषण को लात मारा था और तिरस्कृत करके उसका त्याग किया था, तो वहाँ लिखा है गोस्वामी जी ने कि -

‘रावण जबहिं विभीषण त्यागा। भयउ विभव बिनु तबहिं अभागा।।’

रावण का सारा बल वैभव निकल गया। तो इस आत्मा से ही सबकी जिंदगी है। उसी चेतन से सब चैतन्य होते हैं। वही मूल चीज है। और उसी के लिए यह लड़ाई लड़ी जाती है, किसी दूसरी चीज के लिए नहीं। सीता का यहां कुछ मतलब नहीं है। यह तो बहिर्मुखता का स्वभाव बना है लोगों का, इस कारण से ऐसा समझते हैं। बाहरी घटनाओं से अर्थ लेते हैं। अब जब हम उस जगह नहीं हैं। अन्तर्मुखी वृत्ति से साधना में लगे हैं, तो हमारे मन में बाहर वाला भाव नहीं आना चाहिए। हमारे अन्दर यह आना चाहिए कि यह सीता तो हमारी अर्जित की हुई क्षमता है। हमें जानबूझकर इसे खर्च करना है, अपने लक्ष्य को पाने के लिए। हम जानबूझकर हाथ डाल रहे हैं, सर्प के बिल में। हमारे अन्दर प्रवृत्ति बनी कि हम संसार का त्याग करें और ईश्वर को प्राप्त करें। इसलिए हमने अपनी पूरी की पूरी ताकत झोंक दिया

इसमें कि अब हमें कुछ काम करना है। जिसके लिए हमने यह मानव तन धारण किया है, वह काम करना है। काम-क्रोधादि राक्षसों का विनाश करके संसार से मुक्त होना है। इसलिए सीता को भी अपनी ड्यूटी (कर्तव्य) निभाना है। और जब काम पूरा हो गया, तो वह अपनी जगह पर पहुँच जाएगी। राम के पास आ जाएगी। इसी के लिए अब भेजा गया है, विभीषण और हनुमान, अंगद वगैरह को- कि सीता को ले आया जाय। इसका अर्थ यह आता है कि साधना की पूर्णता पर जो क्षमता महात्मा में आती है वह आ रही है - वहाँ कोई स्त्री नहीं है जो पालकी में बैठकर आई। वह तो राम की शक्ति है, जो उससे अलग नहीं है। अभिन्न है। यह आना-जाना सब बाहरी नाटक है।

देखन भालु कीस सब आए। रक्ख कोपि निवारन धाए॥

कह रघुवीर कहा मम मानहु। सीतहिं सखा पयादेहिं आनहु॥

देखहु कपि जननी की नाई। बिहंसि कहा रघुवीर गोसाई॥

नीति शास्त्रों में लिखा है कि -

‘मनस्यन्यद् वचस्यन्यद् कर्मस्यन्यद् दुरात्मनाम्।

मनस्येकम् वचस्येकम् कर्मस्येकम् महात्मनाम्॥’

जो मन में हो वही बात कही जाय, और जो कहा जाय वह किया जाय। यह महात्माओं का तरीका हैं निश्छल-निष्कपट रहे। कोई दुराव न रखे, यह मतलब है यहाँ। अन्दर बाहर से एक रहे। अब सीता के ही ऊपर इस पूरी लड़ाई का दारोमदार था। शक्ति के ऊपर ही पूरी निर्भरता आती है। वही सब कुछ करती है, नाम चाहे राम का हो, चाहे रावण का हो। काम-क्रोध का नाम हो चाहे ज्ञान-वैराग्य का नाम हो। नाम किसी का हो जाय, काम तो इनर्जी से ही होगा। जिसके पास यह इनर्जी रहेगी, उसी की विजय होगी। उसी को खुशी मिलेगी। तो यह सीता जब पालकी में रही, तो सब बंदर-भालू उसे देखने के लिए टूट पड़े। उतावले हो गए कि यह क्या चीज है, कैसी है - कि जिसके लिए हम सब जान की बाजी लगाए रहे - इसे देखना चाहिए। और जब प्रत्यक्ष हो गई, बाहर निकल आई तो वैसी उत्सुकता नहीं रह गई, देखने के बाद। जैसे हम कोई चीज मुट्ठी में बंद कर लें, तो तुमको उत्सुकता होगी कि स्वामी जी क्या लिए हैं, और अगर खुली हथेली में रख लें, तो देख लेने पर वैसी उतावली नहीं रह जाती। इसलिए राम ने कहा, दुराव-छिपाव न रहे। सब देखें जननी की तरह देखें सब। तो लक्ष्य प्राप्ति के अनन्तर महात्मा के

अन्दर जो शक्ति सामर्थ्य आती है वह छिपी नहीं रहती। उसको देखकर उसकीसाधना में सहयोगी भावनाओं में जो उल्लास आता है - उसी का इसमें चित्रण है।

सीता प्रथम अनल महुँ राखी। प्रगट कीन्ह चह अन्तर साखी॥

दो. - तेहि कारन करुणा निधि, कहे कसुक दुर्बाद।

सुनत जातु धानी सब, लागी करै विषाद॥

प्रभु के बचन सीस धरि सीता। बोली मन क्रम बचन पुनीता॥

लछिमन होहु धरम के नेगी। पावक प्रगट करहु तुम बेगी॥

परमात्मा की शक्ति परमात्मा के साथ रहती है। वह अच्युत परमात्मा से अभिन्न होने के कारण कभी च्युत नहीं होती। वह शक्तिमान कभी शक्ति से रहित नहीं होता है। वह निरवयव ब्रह्म सदा एकरस और निर्लेप रहने वाला है। उसमें पैदा होना - मरना ये सब क्रियाएं नहीं होती हैं। और जो शक्ति परमात्मा की, प्रयोग में आती है, वह दोयम नम्बर की है। वह असली शक्ति वाला रूप उसका नहीं रह जाता। तो परमात्मा का असली रूप तो निरवयव है, और सावयव कृत्रिम है। इसलिए उसके साथ जो कार्य क्षेत्र में शक्ति रहती है, वह भी कृत्रिम रहती है। ऐसी यह जो बनावटी या नकली शक्ति है - सीता, उसका अपहरण हुआ। और अब अनुराग रूपी अग्नि में, ज्ञान रूपी गर्मी में तपकर, वह नकली बर्फ रूप सीता (शक्ति), पानी रूप असली की असली अपनी जगह पर है। ऐसा है यह। यह प्राप्ति वाली स्थिति की बात है - कथानक में इस तरह से लिखी गई है।

तो राम ने कहा कि सीता आग के अंदर से होकर आवे। वह मूल चीज आवे, जो मेरे पास आना चाहिए। वह खुद को पाक करे पावक में, और पाक करके असली रूप में यहां आवे। ऐसा नियम है यह। जैसे विजनेस (व्यापार) में जो पैसा चल रहा है - रोटेशन में है, जो सर्कुलेशन में आ गया है, दूसरे ढंग से, उसे कहते हैं - करेंट एकाउंट (चालू खाता) प्रतिदिन निकालो - जमा करो। फिर वह आग में निकलने के बाद शुद्ध आय बनकर फिक्स डिपोजिट (स्थायी जमा खाता) में चली जायगी। फिर वह इनर्जी फिक्स हो जायगी। अब उसे रोज-रोज काम में नहीं लेना पड़ेगा और उसी में बढ़ता चला जायगा - ऐसी प्रक्रिया साधक के अंदर एक अवस्था में आ जाती है। साधक जब साधना में लगा होता है, तब उसे यह भी देखना पड़ता है कि कहीं मुझमें कमजोरी न आ जाय, कहीं मेरी ताकत क्षीण न हो जाय। और जब साधना परिपक्व हो जाती है, तो अक्षुण्य ताकत उसमें आ जाती है। फिर कमजोरी आने का प्रश्न नहीं रह जाता। फिर शक्ति का ऐसा अजस्र स्रोत उसे मिल जाता है कि कमी

का कोई प्रश्न ही नहीं रह जाता। ऐसी क्षमता जब साधक के पास आ जाती है, तब फिर उसको संत कह सकते हैं, साधना-युक्त महात्मा कह सकते हैं। जब तक साधना की पूर्णता नहीं आ जाती, तब तक वह साधक कहा जाता है। इस तरीके से इसमें क्षमता का अन्तर समझना चाहिए।

मन के अन्दर जो विचार आते हैं, उनमें अच्छे-बुरे का विवेचन करना विवेक कहा जाता है - यह विवेक ही लक्ष्मण है। बुरे और अच्छे का सत्य-असत्य का निराकरण करना इसका काम है। इस लक्ष्मण में बड़ी ताकत है। यह पूरी धरा को धारण किए हुए है। 'सकल जगत आधार।' अगर सही-गलत, उचित-अनुचित का विवेचन न कर पाया जाय। अगर दूध का दूध और पानी का पानी न कर पाया जाय तो संसार की गतिविधि ठप हो जायगी। यह विवेक ही इसका आधार है। यह शेष नाग का रूप है। शेष कहते हैं - एण्ड (अंत), तो निष्कर्ष को, निर्णय को, निर्णय-स्वरूप विवेक है - यह है शेषावतार लक्ष्मण। इसी पर यह जगत आधारित है। ऐसे यह पृथ्वी किसी सर्प के सिर पर नहीं रखी है। ये उस समय की बातें हैं जब लोग नहीं जानते थे, भूगोल-विज्ञान इनता विकसित नहीं था। ऐसे शब्द प्रयोग में आ गए और प्रचलन में आ गए। अनभिज्ञ लोग आज भी रुढ़िगत ढंग से उसी को पकड़े चले जा रहे हैं। इसलिए सब सही-गलत मिक्स हो गया। यह विचारों का संसार इतना जटिल हो गया, इतना परेशानी मुक्त या उलझाव वाला बन गया कि इसमें से सही सिद्धान्त को ढूँढकर निकाल पाना हर आदमी के बूते का काम नहीं है। विवेकशील व्यक्ति ही इसमें निष्कर्ष पा सकते हैं।

सत्य और असत्य के मिलने का परिणाम यह संसार है। और इसमें सत्य-असत्य को अलग-अलग करना यह विवेक का काम है। इसलिए विवेक मूल चीज है। इसके बिना साधक का काम नहीं चलता। राम का काम बिना लक्ष्मण के नहीं चलता। हमेशा साथ में रखते हैं। उसके बिना कदम नहीं रख सकते। उस विवेक रूपी लक्ष्मण की जरूरत है, राम की सही पहिचान लक्ष्मण के पास है। सत्य को समझने के लिए निर्मल विवेक होना चाहिए। अब वह विवेक मिले कहाँ से? तो गोस्वामी जी कहते हैं। कि,

‘बिन सत्संग विवेक न होई।’

अब दूसरी समस्या आ गई कि सत्संग कहां मिलेगा? तो सत्संग सद्गुरु कराते हैं। निष्कपट भाव से गुरु-चरणों में समर्पित हो जाय, तब होता है सत्संग। तब विवेक से भेंट होती है

तो उस विवेक रूपी लक्ष्मण को सीता साक्षी बना रही है। 'लछिमन होहु धरम के नेगी।' वही बताएगा सही-गलत का निर्णय उसके बिना हो नहीं सकता। नेगी शब्द गांव देहातों में प्रचलित है। समाज में (नाई, लोहार, भाट इत्यादि को) विवाह आदि विशेष अवसरों पर नेग दिया जाता है। एक प्रकार से उपहार दिया जाता है। इस तरह नेग पाने वाले को नेगी कहा जाता है। राम-सीता के विवाह के प्रसंग में नेगी शब्द का प्रयोग हुआ है - नेगी नेग जोग सब लेंहीं।

रुचि अनुरूप भूपमनि देहीं।।'

मूलतः नेगी का अर्थ साक्षी या सहयोगी से है। तो यह जो धर्माचरण किया गया था। पंचवटी में, उसमें लक्ष्मण को तो शामिल किया नहीं गया था। अलग रखा गया था जब राम ने कहा था कि - तुम पावक महुं करहु निवासा। तब लगि करहुं निशाचर नासा।।' राम और सीता ने किया था, वह धर्माचरण। तो अब उस धर्माचरण का नेगी लक्ष्मण को क्यों बनाती है सीता? अब क्यों कहा कि 'लक्ष्मण होहु धरम के नेगी। यह तो उन्हीं दोनों को तय करना चाहिए, क्योंकि पहले तो किसी से यह बात प्रकट नहीं किया कि असली सीता को अग्नि में छिपाए दे रहे हैं और नकली रूप से यह सब लीला कर रहे हैं।

तो यह सब साधक के अन्दर की प्रक्रियाएं हैं। भावना सूक्ष्म रूप में रहती है। फिर प्रकट होकर आकार ले लेती है, और बहुत बड़ा आकार ले लेती है। उसमें जो भावना तैयार होती है वह फिर अन्दर आती है, और फिर दूसरा रूप लेकर, नए रूप में बदलाव लेकर बाहर आती है - यह क्रम निरंतर चल रहा है। और जो यह संसार है, यह तो नकली है ही। इसमें तो सब नकली ही है - अब उस नकलीमें क्या नकली और क्या असली? अध्यात्म में इन सब प्रसंगों के आशय को लोग स्पष्ट कर नहीं पाते - बस शब्दों से बोध करना चाहते हैं। क्लियर (स्पष्ट) करने का काम तो नेगी लक्ष्मण का ही है। विवेक ही बता सकता है कि अन्दर क्या प्रक्रिया हुई, कैसे हुई? वह विवेक सद्गुरुओं की शरण में रहकर भजन करने से मिलता है।

छंद - श्री खंड सम पावक प्रवेस कियो सुमिरि प्रभु मैथिली।

जय कोसलेस महेस वंदित चरन रति अति निर्मली।।

प्रतिबिम्ब अरु लौकिक कलंक प्रचंड पावक महुं जरे।

प्रभु चरित काहु न लखे नभ सुर सिद्ध मुनि देखहिं खरे।।

क्यों यह लिख दिया कि सीता जी को जो लौकिक कलंक था वह आग में जल गया - कहीं कुछ खराबी हुई क्या? इसका तो यहाँ कोई मतलब नहीं था लिखने

का। सीता तो आग में सुरक्षित रख दी गई थी - और फिर उसके बाद अपहरण बगैरह क्रियाएं हुईं। इसलिए सीता वह है नहीं, जिसे स्पर्श किया गया या लंका में रखा गया। सीता जो अग्नि के पास धरोहर थी, उससे अपनी चीज वापस ले ली। उसमें कलंक का प्रश्न ही नहीं पैदा होता। पावक तो पवित्रता का द्योतक है। पावक शब्द का मतलब ही होता है पवित्र करने वाला। तो सीता के लिए ऐसा लिख देना तो ठीक है नहीं। और नकली सीता तो अब रही नहीं, इसलिए उससे कोई मतलब नहीं रह जाता।

अब आज इसी बात को लेकर समाज के लोगों में बड़ा विवाद होता है। एक महात्मा रहे - आचार्य तुलसी। उन्होंने 'अग्नि परीक्षा' नाम की एक पुस्तक लिखी। उसमें यही प्रकरण पूरा दे दिया। तो देश भर में बड़ा झगड़ा खड़ा हो गया था। बहुत बड़ा विवाद हुआ था। तमाम उपद्रव हुआ था।

लोग आदर्श देखते हैं, और उस लिखने वाले ने लिख दिया लौकिक यथार्थ। साधारणतया जैसे दुनिया में होता है, उस ढंग से वर्णन किया। जैसे आम आदमी के गुण-दोषों को देखते हैं - इस तरह से लौकिक यथार्थ रूप ले लिया उस कवि ने। इसलिए झगड़ा पैदा हो गया। तो अगर इन अलौकिक क्षेत्र की बातों को लौकिक क्षेत्र में घसीटेंगे तो झगड़ा तो होगा ही। दुनिया में तो गुण-दोष रहेंगे ही। 'विधि प्रपंच गुन अवगुन साना।' अच्छाई-बुराई दोनों रहेंगी। इसलिए विवेक से काम लिया जाय, लक्ष्मण को नेगी बना लिया जाय तो हल निकल आता है। कि संसार में जो कोई भी शक्ति कार्यरत होगी, वह पवित्र से पवित्र क्यों न हो, अपवित्र हो ही जाएगी। अगर भगवान संसार में भाग लेंगे, तो उसे भी ठोकर लगेगी संसार की तरफ से। अपमान सहन करना पड़ेगा, निन्दा सुननी पड़ेगी। संसार में गुण दोषदोनो हैं - दोनो से आच्छादित होना पड़ेगा। जो लोग गुण देखेंगे वे स्तुति करेंगे, जो दोष देखें वे निन्दा करेंगे। जो साधक संसारी रीति-रवैया में चले गए - उसी को सत्य मान लिये, उनको भी ऐसी उलझन का शिकार होना पड़ता है। और जो साधक संसार को असत्य मानते हैं, अध्यात्म दृष्टि से देखते हैं, उन्हें न उस धोबी से मतलब है, न उसकी निन्दा से मतलब है। और न राम और सीता के लौकिक रूप से मतलब है - न उसकी अच्छाई-बुराई से मतलब है। तुम्हें जिस राम से मतलब है वह तो इन सबसे परे निर्लेप, निरवयव तत्त्व है। उसमें निन्दा-स्तुति कुछ नहीं पहुँचती। योगी के अन्दर तो शक्ति ही सीता हैं उसीशक्ति को पहले योग-साधना से अर्जित किया जाता है। फिर शान्ति के बाधक जो विकार हैं अन्दर, उन्हें उसी के जरिए नष्ट कर दिया जाता है, और फिर तीसरे मरहले पर योगी अनुराग रूप अग्नि में उसे शुद्ध करके, स्थाई

शान्ति के रूप में लेकर बैठ जाता है। फिर उस महात्माको कोई अच्छा कहे, चाहे बुरा कहे।

‘निन्दा स्तुति उभय सम’

तो गोस्वामी जी तो बहुत निपुण कवि थे - महात्मा थे। उन्होंने बड़ी पक्की नजर रखी है, अपने काव्य के ऊपर - कि हम संसार की हर बात को लेने का प्रयास करें, ताकि यह ग्रंथ समाज के लिए ग्राह्य हो जाय और रुचिकर बने। और उसके अन्दर ऐसा गोप्य आध्यात्मिक ज्ञान भर दें, जो सबकी समझ में न आए, बल्कि किसी सच्चे जिज्ञासु को बड़ी लगन और मेहनत के बाद समझ में आए। इस तरह से यह अच्छी नीति रही उनकी। क्योंकि कोई भी भगवान का भक्त-साधक हो, उसे इसी संसार से गुजरना पड़ता है। इसी समाज में से निकलकर आता है। आम आदमी का जीवन व्यतीत करता रहता है, और इसी तरह से सुनते-समझते संसारी जीवन के जो कार्य-व्यवहार हैं, उनसे एक दिन अचानक घृणा हो जाती है। और ऐसी घृणा हो जाती है कि उधर से मुंह फेर लेता है, संसार के राग का त्याग करके परमात्मा का अनुरागी बन जाता है। अन्तर्मुखी वृत्ति वाला साधक बन जाता है। बाहरी अर्थ को छोड़ देना पड़ता है, अन्दर के अर्थ में इन्हें लेना पड़ता है। हम नहीं जानते कि लंका कोई सोने का किला हो सकता है, हम तो जानते हैं कि यह मानव तन, यह कंचन-काया ही वह किला है। इसमें आसक्ति होने का नाम लंका है। हम नहीं मानते कि मय नाम का कोई ऐसा दानव हो सकता है - जो हर युग में पाया जाता है, हम तो यह जानते हैं कि यह हमारा मन ही मय दानव है। हम नहीं मानते कि रावण नाम का कोई पंडित और दुराचारी दस सिर और बीस भुजा वाला दिग्विजयी राजा हो सकता है, हम तो यह जानते हैं कि दसो इंद्रियों से विषय -भोग में तत्पर रखने वाला मोह ही रावण है, जिसने अन्दर तमाम दुर्गुणों (राक्षसों) का बड़ा भारी दल-बल तैयार कर दिया है, और सद्गुण समूह को (सुरों को) त्रस्त किए है। हर शरीर के अंदर यह जो राम है आत्मा, उसे यह मोह रूपी रावण परेशान किए है। उसकी शान्ति रूपी सीता का अपहरण कर लेता है। तो हम नहीं चाहते कि स्त्री के रूप में सती सीता हो, हम तो शक्ति के रूप में, शान्ति के रूप में, उसे चाहते हैं। हमारा इष्टदेव, हमारा भगवान हमें वह शक्ति दे, जिसका हम क्रियान्वयन कर सकें साधना में। और जो आध्यात्मिक सिद्धान्त है, उसको अपने शरीर, मन, इन्द्रियों और अन्तःकरण से कार्य रूप में परिणत कर सकें। इसलिए हम उस सीता की उपासना करते हैं, नाम लेते हैं, आदर करते हैं और उसकी व्याख्या करते हैं - जो हमारी साधना को पूरी कराकर परमात्मा से भेंट करा दे। हमें वह स्वरूप दिला दे। फिर उस

शक्ति की हम चिरंतन शांति के रूप में स्थापना कर लेंगे। यह सार्वभौमिक, सार्वकालिक अर्थ साधकों को लेना चाहिए। मेरे विचार से कोई विशेष जाति, समुदाय, सम्प्रदाय या देश-काल का इसमें एकाधिकार नहीं है। यह मनुष्य मात्र के लिए उपयोगी और देश-काल अबाधित अध्यात्म-ज्ञान है। जिस किसी को जब भी ईश्वरीय स्फुरण आ जाय और ईश्वर की कृपा से साधना करने की स्थिति-परिस्थिति व शक्ति प्राप्त हो जाय - वह कोई भी हो, कहीं भी हो, इस आध्यात्मिक तरीके से आत्म कल्याण कर सकता है। यही वह धर्म है जो समस्त मानव जाति को ग्राह्य हो सकता है। मानव धर्म हो सकता है। विश्व समुदाय के लिए शांति-सुख और आत्मीयता का वाहक हो सकता है। 'मानस' की कथा का यही उद्देश्य है।

इसे बाहरी तरीके से लेंगे, तर्क और वाग्जाल का विषय बना देंगे, तो देखो, राम का चरित्र गोस्वामी जी ने कितना निर्मल और मर्यादित दिखाया है, लेकिन उसमें भी लोग दाग - धब्बा लगा देते हैं। सीता के विषय में अयोध्या के ही लोग उन्हें लांक्षित करने लगे। लोकापवाद के कारण सीता को घर से निकालना पड़ा। अब आज देखो इसी बात के लिए राम को दोषी मानती है दुनिया, कि निर्दोष स्त्री को असहाय वन में छोड़ दिया गया। शंबूक का प्रसंग आज भी वर्ग-भेद की जड़ों में पानी दे रहा है, और इस के लिए दोषी राम को माना जाता है। तो यह दुनिया है दोरंगी-स्तुति भी कर लेगी, निंदा भी कर लेगी। यह संसार अन्योन्याश्रय दोष से युक्त है। इसमें प्रकाश होगा तो अंधकार जरूर होगा। यह नियम है। कोई भी बात हो, ज्यों ही कहने में आई और बाहर समाज में गई, त्योंही बात बिगड़ी। और फिर,

‘बिगड़ी बात बनै नहीं, लाख करौ किन कोय।

रहिमन बिगड़े दूध को मथे न माखन होय।।’

अब जैसे प्रसंगवश मान लिया जाय कि शायदधोबी ने यह बात न कही हो, लेकिन कवि तो मानेगा नहीं, तुलसीदास तो कहे बिना मान नहीं सकते। कवियों में तो इस बात की चाह लगी रहती है, कि हमारी कविता समाज को पसंद आ जाय। देखते हो कवि सम्मलेनों में कितने लटके-झटके से अपनी कविता सुनाते हैं - कवि लोग। कवि का एक ही उद्देश्य रहता है कि मेरी कविता सबको प्रभावित कर दे। इसलिए कवि किसी को छोड़ नहीं सकता - चाहे राम हो, चाहे सीता हो। वहाँ राम-सीता का विषय था, तो उन्हीं पर कलम चल गई -

‘सिय निदंक अघ-ओघ नसाए।’

तो पक्का हो गया कि सीता की निन्दा हुई थी - करते रहे हैं राम की तारीफ, लेकिन सीता की निन्दा को प्रमाणित कर दिया। इसी प्रकार उस ब्राह्मण के पुत्र की मृत्यु हुई थी या नहीं - वह किस्सा (शंबूक बध) हुआ था या नहीं, क्या पता? लेकिन कवि ने उसे प्रमाणित कर दिया, जो आज भी भारतीय समाज की कोढ़ में खाज बना हुआ है। तो यह दुनिया ऐसे ही रंग बदलती चलती है। साधक तो सीधे निष्कर्ष ले लेता है, कि यह तो कवि का धर्म है - वह लिखेगा। अब अगर संसार में हम ख्याति चाहते हैं, तो संसार ख्याति ही नहीं देता, अपख्याति भी देता है। यह दोनों चीज देगा। कवि ने तो धोबी का प्रसंग या शंबूक का प्रसंग-राम की प्रशंसा में ही लिखा था, लेकिन वही बात निन्दा का हेतु बन गई। तो यह संसार एक्शन-रिएक्शन है। यहाँ स्तुति का रिएक्शन निन्दा के रूप में आ जाता है। इसलिए महात्मा की दृष्टि में निन्दा-स्तुति दोनों समान हैं।

जब जब नाथसुरन्ह दुख पायो। नाना तनु धरि तुम्हहिं नसायो॥

यह खल मलिन सदा सुर द्रोही। काम लोभ मदरत अति कोही॥

अधम सिरोमनि तब पद पावा। यह हमरे मन संसय आवा॥

हम देवता परम अधिकारी। स्वारथरत प्रभु भगति बिसारी॥

भव प्रवाह संतत हम परे। अब प्रभु पाहि सरन अनुसरे॥

देखो यह कैसी उल्टी-पुल्टी बात लिखी है। ये जो देवता हैं, इनसे ज्यादा विषयी कोई होता नहीं है। ये सब सुर इंद्रियों में निवास करते हैं - दिन रात विषय के अलावा कुछ नहीं करते।

‘इंद्रिय सुरन्ह न ज्ञान सोहाई। विषय भोग पर प्रीति सदाई॥’

जीभ रसास्वाद चाहती है। नेत्र रूप में लुभा रहे हैं - कान शब्द के लिए और त्वचा स्पर्श के लिए सदा लालायित रहते हैं। लेकिन इनका सुरक्षित रहना बहुत जरूरी है, इसलिए परमात्मा इनके पक्ष में सदा खड़ा रहता है। यह विष्णु सत्य पक्षधर है, असुरों का विरोधी है, हमेशा, खुले आम। और सब ऋषि-मुनि, शास्त्र पुराण इसको ठीक मानते हैं। और बुराई की जड़ ये सब देवता बैठे हैं अन्दर। बेईमानी तो अन्दर से ही स्फुरित होती है। और फिर मारे वे जाते हैं जो बेइमान लोग हैं। इस तरीके से इस सृष्टि का आटोमैटिक तरीका ही ऐसा बना हुआ है। यह बड़ी विचित्रता है। इसलिए भगवान की माया को अनिर्वचनीय कहा गया है।

देवता कहते हैं कि हे भगवान, इस महा अधम रावण को आपने अपना पद दे दिया- यह देखकर बड़ा आश्चर्य हमारे मन में है। तो देखिए, भगवान नाम का कोई

व्यक्ति तो है नहीं। वह तो एक शिला, एक लेबल, एक भूमिका है। वह तो ऐसा है, कि जिसकी उसमें रुचि होती है और लगन होती है, उसे वहाँ बैठा दिया जाता है। और इस बाहर की दुनिया में तो अपना पद देने का मतलब हुआ कि राम उस पद से हट गए और रावण को उस पर बैठा दिया। ऐसा वह पद नहीं है। परमात्मा एक ऐसा लेयर (स्तर) है कि उसमें सब समाहित हो जाता है। और उसीका रूप बन जाता है। ये देवता जो बोल रहे हैं, अपने स्तर से बोल रहे हैं - परमात्मा के स्तर पर सुर-असुर, अच्छा-बुरा कुछ नहीं होता। वह एकरस तत्व है, अद्वैत कोटि की बात है। तो देवता उसे नहीं समझ सकते, उसे तो महात्मा ही समझते हैं। गोस्वामी जी समझते हैं, कि क्यों उसे अपना पद दे दिया। महात्मा, गुण-अवगुण से परे समदर्शी होते हैं। दुनिया के द्वन्द्व से, संसार के सर्कुलेशन से ऊपर उठे हुए रहते हैं, इसलिए वे उस लेबल (स्तर) को समझते हैं - अनुभव कर सकते हैं। परमात्मा से ही सुर-असुर सब पैदा होते हैं। एक बायां अंग, एक दाहिना अंग-दोनों अंग उसी के हैं। उसके स्तर से इनमें अभेद होता है। संत उस अभेद स्थिति की अनुभूति लिए रहते हैं, उसमें प्रतिष्ठित रहते हैं, इसलिए उसे जानते हैं। उसकी व्याख्या कर सकते हैं।

रघुपति प्रथम प्रेम अनुमाना। पितहिं चितइ दीन्हेउ दृढ ज्ञाना॥

ताते उमा मोक्ष नहिं पायो। दशरथ भेद भगति मन लायो॥

सगुनोपासक मोक्ष न लेहीं। तेहि कहुं राम भगति निज देहीं॥

बार बार करि प्रभुहिं प्रनामा। दशरथ हरषि गए सुर धामा॥

दशरथ की भी वही गति हुई जो देवताओं की होती है। क्योंकि सद्गति तो इन्हें चाहिए नहीं। सद्गति कहते हैं मोक्ष को, और वह उन्हें लेना नहीं। तो फिर दो ही तो हैं - सद्गति या दुर्गति। 'दशरथहरषि गए सुरधामा।' देवलोक को चले गए, स्वर्ग चले गए। और अभी-अभी क्या कह रहे थे वे स्वर्ग के देवता लोग? भव प्रवाह संवत हम परे।' तो अब दशरथ भी उसी भव प्रवाह में दुर्गति को भोगने के लिए सुर लोक चले गए, क्योंकि मोक्ष उन्हें नहीं चाहिए। यह जो देव-दानव, स्वर्ग-नर्क है - यह संसार क्षेत्र की बातें हैं।

तो वहीं के वहीं रहे। और तारीफ के पुल बांधे पड़े हैं। अपनी बात की आज भी घोटार्ड-पिटार्ड करते चले जाते हैं। कहते हैं भक्ति लो, ज्ञान नहीं। क्योंकि 'ज्ञान मोक्षप्रद वेद बखाना।' और उनके लिए इसकी (मोक्ष की) मनाही है। 'सगुनोपासक मोक्ष न लेहीं।' इसलिए भगवान ने तो बड़ी दया करके दृढ़ ज्ञान दिया दशरथ को, लेकिन उन्होंने भगवान की यह भेंट स्वीकार नहीं किया। और इन्द्र के देवलोक को

चले गए। ‘दशरथ भेद भगति मन लायो।’ क्योंकि अभेद या मोक्ष उन्हें पसंद नहीं है। वे तो कहते हैं, हमें तो ऐसे ही शरीर धारी भगवान मिलें, खूब मालपुआ, खीर, मिठाई का भोग लगावें और मस्ती काटें। बदमाशी करें और दण्ड हो तो नरक में पड़े-पड़े रोवें। यही सब ठीक है। मोक्ष में क्या मिलेगा - ये ऐसा कहते हैं। और ब्रह्मा ने अभी क्या कहा स्तुति में? मति मोरि विभेद करी हरिए।’ तो यह सब गोस्वामी जी की कला है, सब नहीं समझते। अरे! दशरथ को तो तब भी इन्द्र आधा सिंहासन देता था, आगे बढ़कर स्वागत करता था। स्वर्ग से ज्यादा वैभव था उसके पास।

‘सुरपति होइ जेहि आगे लेई। अरथ सिंहासन आसन देई॥’

‘दशरथ धन लखि धनद लजारी॥’

तो वहाँ जाकर क्या लाभ मिला? जैसे के तैसे रहे दशरथ। लेकिन यह सब बाहर कहीं इस तरह का दृश्य - दरबार कुछ होता नहीं है। यह तो गोस्वामी जी की कविता की भूलभुलैया है। ये सब बातें साधक के अन्तर्जगत में आती हैं। शरीर अनुगत मन में चेतन का प्रतिबिम्ब है दशरथ। इन्द्रिय अनुगत मन में चेतन का प्रतिबिम्ब है इन्द्र। ये एक ही हैं - दोनो। समय-समय पर अपने-अपने क्षेत्र में कार्यरत रहते हैं। इन्द्रियाँ स्वरूपतः अध्यात्मिक हैं - दस इन्द्रियाँ और चार अन्तःकरण ये 14 अध्यात्म है। और इनमें जो चेतन के प्रतिबिम्ब हैं, वे अधिदैव हैं। इनके विषय अधिभूत कहे जाते हैं। तो यह सब शरीर से भिन्न नहीं हैं। यह सूक्ष्म शरीर और कारण शरीर (जीवात्मा), स्थूल शरीर के साथ जुड़ कर कार्य करते हैं। हैं तो अलग-अलग। जब वह सूक्ष्म या लिंग शरीर स्थूल शरीर से अलग हो जाता है, तो यह मृत होकर जड़वत पड़ा रह जाता है। इतने के लिए अलग हैं - कार्य करने के लिए अलग नहीं हैं। तो यह प्रकृति का ऐसा सांचा-ढांचा बना चला आ रहा है। बस इसमें धारा बदल जाती है। जब हम संसार उन्मुख बने रहते हैं, बहिर्मुख रहते हैं तो रावण को दस सिर वालाराजा मान लेते हैं। और भी जो बातें सुनते हैं, सब ज्यों की त्यों-मूढ़ भाव से मानते चले जाते हैं, चाहे वे बातें असंगत हों अथवा अस्वाभाविक हों। और तब वह जो सही धारा थी अध्यात्म वाली, उसे हम भुला बैठते हैं। अब जरूरत इस बात की है कि सत्संग करते-करते, भजन करते-करते, पैट बदल कर फिर से उस सही धारा को पकड़ा जाय। और उसमें प्रवेश हो जाय, यह संसार वाली धारा छूट जाय।

कैसे छूट जाय, यह बात पहले बताई जा चुकी है। ऐसे भगाने से तो यह संसार हटाया नहीं हटता। हमें ही इससे मुंह फेर लेना पड़ेगा, उधर से आंख मूंद लेना पड़ेगा, त्याग-वैराग लाना पड़ेगा और अपने अन्दर परमात्मा की खोज-खबर में-अध्यात्म की गहराई में डुबकी लगाकर - संसार से गायब हो जाना पड़ेगा। अगर इस तरह गाड़ी सही लाइन में आ जाय तब ठीक हो जाय। और ये सब चित्र जो बन गए हैं दिमाग में, बाहर वाले - ये सब हट जायें। अब बताइए कि देर नहीं लगती, जहाँ लंका का नाम आया, कि तुरंत चित्र खड़ा हो जाता है, और लंका है ही नहीं। यही शरीर है, इसमें आसक्ति हो जाने का नाम लंका है। फिर मैं - मेरा का भाव - यह मोह - इसमें जामवट लेकर बैठ गया। मोह का साम्राज्य हो गया। यह रावण राजा बन गया इसमें। इस तरह से अन्दर ही अन्दर पकड़ बनाते चले जायें तो फिर मानस का सही अर्थ आ जायगा। पैट बदल जाएगा। गाड़ी सही दिशा में दौड़ने लगेगी तो हम अपने गंतव्य को पा सकते हैं।

अगर हम नहीं बदल पाए, और कथा - सत्संग सुनते ही रह गए, तो मतलब ही क्या रहा सुनने का? फिर पंडित में और पागल में अन्तर ही क्या रहा? कोई अन्तर नहीं, चाहे हम आचार्य हों, चाहे पोस्टाचार्य, पी.एच.डी. या डी. लिट् कुछ भी हो - उसका क्या मतलब रहा? भले ही हम सब वेद शास्त्र कंठस्थ कर लें, सब सूत्रों को याद कर लें और वाग्जाल में लोगों को फंसा लें - लेकिन अगर वह कला तुम्हें नहीं आई जो आनी चाहिए, वह रहनी, वह क्षमता, वह तरीका नहीं पकड़ में आया, तो कुछ भी नहीं आया। वह विद्वता किस काम की रही? कहते हैं -

‘सा विद्या या विमुक्तये।’

“विद्या वह कही जायगी जो भव बंधन से मुक्ति दिलाए। यह उद्देश्य होना चाहिए।

तो अब जितने देवता हैं - ब्रह्मा, शंकर जी, इन्द्र और राम के पिता दशरथ जी ये सब वहाँ इकट्ठे होते हैं। युद्ध के पहले नहीं मिले, युद्ध के बाद जीत जाने पर ये सब आते हैं, तो ये सब बाहर के प्रसंग नहीं हैं। और न तो भगवान बाहर कहीं बैठा रहता है, कि आओ मुझसे मिलो। भगवान न जन्म लेता है, न मरता है, वह तो आकाश से भी व्यापक, निर्मल और सूक्ष्म तत्व है। आत्मा उसे कहते हैं, परमात्मा उसे कहते हैं। वह राम है- सबसे अच्छा निर्लेप तत्व है वह। जन्म तो यह शरीर लेता है, यही विनष्ट होता है। इसमें रहने वाला अविनाशी आत्मा है भगवान। उसे तो कोई समझता नहीं - बाहर-बाहर दूढ़ रहे हैं। अगर यहाँ के लोगों से पूछो तो कहेंगे

- बदरी नारायण जाना है दर्शन करने। और वहाँ बदरी नाथ वालों से पूछे तो कहेंगे - चित्रकूट जाना है भगवान का दर्शन करने। अगर इस तरह से तेली के बैल की तरह आंख में पट्टी बांधकर चलते रहे, तो कभी शान्ति नहीं मिलेगी। इसलिए पहले भगवान का सही ठौर ठिकाना जान लिया जाय, तब उससे मिलने चला जाय। कबीर ठीक ही कहते हैं कि,

“चलन चलन सब कोउ कहै, मोहिं अंदेसा और।

साहब सों परिचय नहीं, पहुँचोगे केहि ठौर।।”

वही बात है कि - “घर में वस्तु धरी नहिं सूझै, बाहर खोजन जासी।

संतो सहज मिलै अविनासी।।”

तो “कोई काबे-केदार के चक्कर लगा रहा है।

दिलदार चार मेरा परदे में छिप रहा है।।”

वह परमात्मा हमसे बहुत नजदीक है, अभिन्न है, अपना आत्मा, अपना स्वरूप है। वह तो कहता है कि - “मोकूँ कहां दूँदे बंदे मैं तो तेरे पास में।”

ना मंदिर में ना मस्जिद में ना काबा कैलास में।।”

इस संसार से हमें क्या मतलब? यह नश्वर है, इसे साथ रहना नहीं, इसलिए हमारा यह है नहीं। हमारा तो वह है जो सदा हमारे साथ रहता है। कभी हमसे अलग नहीं होता - उसे पहिचानना है और उसी में रहना है। इसी का उपाय है यह मानस। इसी का कानून है यह। इसे हृदयंगम करना है, और इस पर चलना है।

इस तरीके से जब मानस के अर्थ में लेंगे, तो यह प्रसंग साधना की अन्तिम अवस्था का है। जब साधक की विजय हो जाती है इस साधना रूपी संग्राम में, तब ये सब देवता उसको शाबाशी देने आते हैं। ये सब अन्दर के अवयव उल्लसित होते हैं, स्तुति करते हैं और सफलता को तस्दीक करते हैं। पुण्य रूपी पिता, इन्द्रियों में श्रेष्ठ मन रूपी इन्द्र, इंद्रियों के देवता, सूक्ष्म शरीर में अनुगत चेतन का प्रतिबिम्ब-ब्रह्मा, स्थूल का अधिष्ठाता शंकर, ये सब आकर स्तुति करते हैं, तब विजय मान ली जाती है, सफलता प्रमाणित हो जाती है। यह सब साधक के अन्दर अनुभूतियों में आने वाली बातें हैं - बाहर वहाँ कहीं कोई आया गया नहीं। अगर बाहरी अर्थ में चले गए तो सुनते-सुनते अघाआगे नहीं, और न कुछ फायदा मिलेगा। इसलिए इसे अपने में लेकर इस पर प्रैक्टिकल किया जाय, तब साधन आगे बढ़ेगा और शान्ति-लाभ होगा।

ममहित लागि तजे इन्ह प्राना। सकल जियाउ सुरेस सुजाना॥

सुलुखगेस प्रभुकै यह बानी। अति अगाघ जानहिं मुनि ज्ञानी॥

प्रभु सक त्रिभुवन मारि जिआई। केवल सकहिं दीन्ह बड़ाई॥

सुधा बरसि कपि भालु जियाए। हरषि उठे सब प्रभु आए॥

सुधा बृष्टि भइ दुहुं दल ऊपर। जिए भालु कपि नहिं रजनी चर॥

इन्द्र ने स्तुति किया, फिर कहा कि मेरे लिए क्या आज्ञा है। तो राम ने कहा कि अमृत वर्षा करो और इन मरे हुए भालू-बंदरों को जीवित कर दो। तो इन्द्र ने अमृत बरसाया, लेकिन इसमें यह झगड़ा पैदा हो गया कि - 'जिए भालु कपि नहिं रजनीचर।'।

गोस्वामी जी बड़े पटु और सुविज्ञ महात्मा थे। जगह-जगह ऐसी बात फंसा देते हैं कि लोग चक्कर में पड़ जाते हैं, समझ काम नहीं करती। अमृत का गुण तो यह है कि चाहे पुण्यात्मा हो, चाहे पापात्मा, सभी को जीवित करेगा। ऐसा तो है नहीं, कि पापी को नहीं जीवित करेगा। फिर तो वह अमृत ही नहीं कहा जाएगा। समुद्र मंथन से जब अमृत निकला था तो असुर अमृत पीकर अमर न हो जाय इस डरसे भगवान को मोहनी रूप बनाना पड़ा था। कहते हैं एक दानव को धोखे से अमृत मिल गया था पीने को तो उसकी गर्दन काट दी गई थी तब भी नहीं मरा। राहु केतु नाम से अब भी अमर है ऐसा मानते हैं लोग। इसलिए अमृत के लिए देवता, राक्षस सब बराबर होता है। तो यहाँ पर लोग तर्क खड़ा करते हैं कि जब दोनों के ऊपर अमृत गिरा, तो केवल भालू बंदर जिए, राक्षस क्यों नहीं जिए? यह तो अमृत नहीं, कोई बेईमानी है। लेकिन यह ठीक हुआ है। राम की पल्टन सत्य है, रावण का दल असत्य है। तो अमृत का गुण सत्य पैदा कर देने का है। जो सदैव सजीव है, एकरस रहता है - वह सत्य है। तो उस सत्य का आश्रय लिए हुए है जो, वे परमात्मा के पक्षधर सजीव हैं। वे सजीव रहे। और जो उस सत्य के विरुद्ध असत्य-पक्षधर हैं, वे दुर्गुण रूप राक्षस झूठे हैं, मृत हैं - वे नहीं जिए। वस्तुतः असत्य का झूठ होना ही मृत होना माना जाता है। वह असत्य पदार्थ हैं ही नहीं। इसलिए उनका सत्य है - न रहना, समाप्त हो जाना। इसलिए अमृत ठीक कर रहा है, गलत नहीं कर रहा है। झूठे को झूठा बनाना ही उसको जिन्दगी देना है। और जो सही है उसको सही बनाना उसकी जिंदगी है। जिन्दगी देना अमृत का गुण है, और वही काम किया उसने। अब ये बातें सब विचार जगत से या अन्तर्जगत से जुड़ी हैं। इधर की रूचि अगर नहीं है

तो समझने में मुश्किल आती है। क्योंकि यह मानस का विषय जनरल नहीं है। गोस्वामी जी कहते हैं कि इन बातों को ज्ञानी-मुनि ही समझते हैं।

‘सुनु खगेस प्रभु कै यह बानी। अति अगाथ जानहिं मुनि ज्ञानी॥’

ऐसा यह गम्भीर विषय है।

साधक का मन ही इन्द्र है। यह मन इन्द्रियों में श्रेष्ठ है, इन देवताओं का राजा है। मन ही राजा है।

‘संतोष तखत पर मन राजा, विवेक लगी दरबानी।

जगमग ज्योति जले घट भीतर मुक्ति भरै जहं पानी॥’

मन ही सब कुछ करता है, अभी जब साधन-भजन से कोई मतलब नहीं है, तब यह मन सबको उल्टा टांगे हुए है, बदमाशी कर रहा है। बहिर्मुख है, विषयोन्मुख है। विषयों का दास बना हुआ है। अब इस मन की दिशा बदलनी पड़ेगी। सही रास्ते पर लाना पड़ेगा। आत्मोन्मुख बनाना पड़ेगा। साधन-भजन में लगाना पड़ेगा। जब ऐसा कर लिया जाता है, तब यह मन रूपान्तरित होकर राजा बन जाता है। अमृत देने की योग्यता तब उसमें आ जाती है।

‘पहले यह मन सर्प था, करता जीवन घात।

अब तो मन हंसा हुआ, मोती चुन चुन खात॥’

यही मन विषय उन्मुख जब रहता है, तब सर्पवत रहता है और विषय रूपी विष उगलता रहता है। घातक सिद्ध होता है। और जब यह साधन सम्पन्न हो जाता है तब यही मन गरुड़ बन जाता है। भगवान का वाहन बनजाता है - आत्मा रूपी अमृत ले आता है। स्वर्ग का राजा बनजाता है। वही मन है, जो पहले विषय में डूबा था, अब परमात्मा में डूब चुका है। रूपांतरण हो गया।

तो अब जब यह मन रूपी इन्द्र मान गया, परमात्मा को तस्दीक कर लिया - स्तुति कर लिया, तब यह अमृत बरसाता है। इसके पास जीवन देने वाला अमृत रहता है। फिर उस स्थिति में सत्य रहेगा, असत्य नहीं रहेगा। ऐसा यह मानस का रहस्य है। मन का रहस्य है, इसे समझना चाहिए।

इसे अपने अन्दर एडजस्ट करना चाहिए। एक तरफ तमाम दुर्गुण भरे हैं अन्दर, और एक तरफ सद्गुण हैं। दोनों में संघर्ष चलता रहता है। राम सत्य का प्रतीक है, रावण असत्य का प्रतीक है। सत्य-असत्य इन दोनों की पल्टनों में झगड़ा हर आदमी के अन्दर चलता रहता है। बाहर अनेक रामायणों में इसे राम-रावण के युद्ध के रूप

में लिखा गया है। इसी सत्य-असत्य के आन्तरिक संघर्ष को महाभारत में कौरवों-पाण्डवों की लड़ाई का रूप दिया गया है। इसी को पुराणों में देवासुर-संग्राम कहा गया है। यह सब बहुत बड़ी खोज हुई है। बहुत बड़ी रिसर्च है। अनेक अनुभवशील ऋषियों ने, संत मनीषियों ने अपने-अपने ढंग से इसी संघर्ष को समय-समय पर लिपिबद्ध किया है। हमें अपने अन्दर इसे बैठाना है, सही तरीके से इसकी एडजस्टिंग करनी है। हम लोग इसमें लगे हुए हैं। यहां जो यह शैली बताई जा रही है, हर साधक को चाहिए कि इन कथा-प्रसंगों को इसी ढंग से अपने मानस में ढालते चलें।

गोस्वामी जी की रामायण है - राम चरित मानस। राम के चरित्र मन से। शरीर से नहीं। और दिखाया है शरीर से चरित्र। अयोध्या में राम पैदा हुए। चित्रकूट गए, जंगल-जंगल घूमे। युद्ध किया शरीर से, राक्षसों का संहार किया, फिर राज्य करते रहे बहुत दिनों तक। फिर कहते हैं अवधवासियों सहित सरयू में जल-समाधि ले लिया। तो वह जो बाहरी चरित्र लिखा है - इसे खुद गोस्वामी जी कहते हैं कि - यह तो लीला मात्र है, नकल है। यह अवास्तविक है। वास्तविक तो मानस का चरित्र है। वह असल है। निरवयव स्वरूप असली है, सावयव तो लीला रूप है। जगह-जगह यह बात आती है -

‘भगत हेतु लीला तनु धरहीं।’ ‘नट इव चरित करत रघुराई।’

तो गोस्वामी जी का ध्येय इसमें यह है कि लोग समझ सकें यह बात, कि भगवान सबमें होता है, सब संसार में भगवान होता है - परमात्मा से ही तो संसार है। बर्फ रूप संसार में परमात्मा रूप पानी ही तो है। लेकिन यह पहले नहीं माना जायगा। बाद की बात है यह। प्राइमरी का लड़का एम.ए. का कोर्स नहीं पढ़ सकता। रिसर्च नहीं कर सकता। अभी तो शुरू में यह स्थिति रहती है कि,

‘गो गोचर जहं लगिमन जाई। सो सब माया जानेहु भाई।।’

फिर भजन करते-करते जब भगवान अन्दर जागृति दे देते हैं, तब फिर आखीर में वह बात आती है कि - ‘सीय राममय सब जगजानी।’ ‘सर्व खलु इंद ब्रह्म।’

शुरू में जब लड़का स्कूल जाता है तो उसे क माने कबूतर और ख माने खरगोश, ग माने गमला बताया जाता है - मोटे तौर से वर्णमाला का ज्ञान कराने के लिए। बिल्कुल झूठी चीज है, लेकिन वहाँ यही सही है। अब वही लड़का जब एम.ए. में पहुँच गया और तब अगर उससे पूछा जाय, तो वह ख माने खरगोश नहीं बताएगा। वह तो ख माने आकाश बताएगा। और यदि परीक्षा में ख माने खरगोश बताएगा तो फेल हो जाएगा। वह यह तर्क नहीं दे सकता कि कभी हमें यह पढ़ाया

गया था। अब उसे ज्ञान हो चुका है कि सही अर्थ यह है - पहले वाला गलत था। तो कहने का मतलब यह है कि अब यहां आकर उस नकली अर्थ को छोड़ा जाय। अब असली अर्थ को हृदयंगम किया जाय। क माने कबूतरकब तक पढ़ते रहेंगे? नकली चीज को इसलिए लिया जाता है कि उस नकल से ही असल मिलता है। लड़का अगर प्राइमरी न पढ़े तो एम.ए. कैसे कर लेगा? इसलिए यह जो बाहरी चरित्र है, इसका आधार लेकर हम मानस में राम चरित्र को उतारें। अगर उसका सही रूप हमारे दिल-दिमाग में आ जाय, तो हम कामयाब हो जाएंगे।

सही रूप ऐसा है कि हमारा मानस-यह अन्तःकरण-संकल्पों की दुनिया है। इन अच्छे-बुरे संकल्पों और विचारों-भावनाओं को देहधारी पात्रों का रूप देकर, और इन संकल्पों के उठने और सुप्त होने को, विचारों की रगड़-झगड़ को, बाहरी घटनाओं का रूप देकर गोस्वामी जी ने यह रामायण बनाई है। इस तरह से यह मानस-सूक्ष्म जगत की गतिविधि का स्थूल रूपान्तरण है। इसके पीछे गोस्वामी जी का मंतव्य था, कि पढ़ने वाले अध्यात्म पथ के पथिक पहले स्थूल को पकड़ेंगे, और फिर सूक्ष्म की योग्यता प्राप्त कर लेंगे, और अपने गंतव्य की सही दिशा पा लेंगे। क्योंकि मूल तो मानस ही है। यहीं से यह रामकथा रूपी सरिता (सरयू) निकली है। जो चलते-चलते आगे भक्ति की भागीरथी से मिल जाती है।

‘मानस मूल मिली सुरसरिही’

और जब सही दिशा में चली यह भक्ति की धारा - अन्तर्मुखी साधना की प्रक्रिया पकड़ में आ गई, स्थूल, सूक्ष्म कारण तीनों की साधना पूरी होती चली गई - तो फिर यह गंतव्य से मिला देती है। परमात्मा के स्वरूप में ओतप्रोत कर देती है।

‘त्रिविध ताप त्रासक तिमुहानी। राम सरूप सिंधु समुहानी।।

ऐसी यह कथा है। मानस मूल है, इसका। यह मन ही मूल है सबका। इसी से संसार बनता है। मन में जो संकल्प उठते हैं, वह नाभिकमलमें बीज रूप में आते हैं। फिर वह अंकुरित होता है। फिर किल्ले फूटते हैं, फिर हृदयकमल में आकर पुष्ट हो जाता है। कंठकूप में आकार लेकर वाणी में आ जाता है। कहने में आ गया। सुनने में आ गया। फिर क्रिया में बाहर दुनिया बनती चली जाती है। संबंध तैयार हो गए। क्रिया-प्रतिक्रिया चल पड़ी। संसार-चक्र चल पड़ा। ग्रेविटी (गुरुत्वाकर्षण) आ गई। आटोमैटिक (स्वतः संचालित) हो गया। इस तरह से मन में ही संसार है। इस मन के रहस्य को हमारे ऋषियों-महात्माओं ने समझा और उसकी क्षमताओं को हृदयंगम करके, उसको नियंत्रित करके, आत्मानुसंधान में सफल हुए। और इस तरह से

अनंतजीवन का अथवा मृत्युबंधन से मुक्ति का मार्ग प्रशस्त हुआ मानव के लिए। इसलिए साधना करने वालों को मानस की भूमिका में आना पड़ता है। इस मानस का मंथन करना चाहिए। यहीं से अमृत मिलेगा।

यही मन इन्द्र है। और इस बाहर की दुनिया में न कहीं इन्द्र होता है, न स्वर्ग होता है, न अमृत होता है। न अमृत कोई ऐसी चीज है, जो बरसाई जाय। यह सब संसार की दृष्टि ऐसी है, कि इसमें जो कहो वही ठीक है। क्यों है, क्योंकि यह असत्य है – इसलिए इसमें सही-गलत सब बराबर हो जाता है। जैसे सपने में राजा बन जाओ, चाहे भिखारी के रूप में देखो अपने आपको। उससे कोई हानि, लाभ हुआ नहीं। ऐसा यह स्वप्नवत् संसार है। गोस्वामी जी कहते हैं –

सपने होई भिखारि नृप, रंक नाक पति होइ।

जागे हानि न लाभ कहु, तिमि अपंच जिय जोइ॥

इसलिए साधक को फालतू बातों में नहीं पड़ना चाहिए। बन्दर जिए या राक्षस मरे – बाहरी रूप सेलेने पर हमें इससे कौन सा फायदा होने वाला है? हमें तो अपने मानस को पढ़ना है। वहीं निगाह रखनी है। अपनी क्रिया में लगे रहना है – फायदा उसमें है। और यह तो गोस्वामी जी की काव्य-चातुरी है। समाज की रुढ़ियों में जमावट लिए हुए लोगों की बुद्धि के इलाज का तरीका है उनका। लौकिक शैली से अलौकिक बात कह देते हैं। जैसे कैप्सूल में दवा भर दी जाती है। अब कोई रोगी दवा तो हटा दे और कैप्सूल का खोखा ही खाता रहे तो यह भवरोग नहीं मिटेगा। इसलिए इसे मानस में ले लेना चाहिए। बाहर दुनिया में ऐसा कहीं होता है क्या कि मरा हुआ जीवित हो जाय? मरा हुआ इस तरह से जीवित नहीं होता। जो मरेगा वह जन्म लेगा – यह नियम है। मरे हुए का जीवित होना इस तरह से नहीं हो सकता। इसी रामायण में लिखा है –

‘मुए करै का सुधा तड़ागा।’

मर गया, तो फिर उसे चाहे अमृत के सरोवर में डुबाए रखो, गोस्वामी जी कहते हैं कि वह फिर से जीवित नहीं हो सकता। इसलिए ये बाहरी तर्क-वितर्क छोड़कर। भजन में मन लग जाय तो। धीरे-धीरे सब रहस्य खुलते चले जाएंगे।

हरि: ओम